पद्य प्रवाह

सुशीला कुमारी

पद्य-प्रवाह

हिन्दी के प्राचीन तथा अर्वाचीन कवियों की कविताओं
का प्रतिनिधि संकलन

सुशीला कुमारी

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई नई दिल्ली

891.431
S96 P
16546

मूल्य : दो रुपये आठ आने

मुद्रक :
गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस
दिल्ली

प्रकाशक :
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
बम्बई

16546

हिन्दी कविता : पृष्ठभूमि और विकास

सृष्टि-रचना के साथ ही कविता की उत्पत्ति समझिए। किन्तु हिन्दी-साहित्य में गद्य से पहले कविता का प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ में कविता की भाषा अपभ्रंश रही और बाद में मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषाओं का अन्तिम स्वरूप १००० ई० के पश्चात् बदलकर आधुनिक भारतीय भाषाओं के जन्म का कारण बना। प्राचीन युग में जो भी काव्य रचा गया उस पर अपभ्रंश भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

चारण-काव्य

चारण-काव्य को हम १०५० से १३५० तक के काल में ही फलता-फूलता देखते हैं। उस समय वीर रस की कविताएँ ही अधिकांशतः लिखी गईं, क्योंकि उन दिनों राजनीतिक उथल-पुथल के कारण हिन्दी-भाषा अपना स्वरूप ठीक तरह से निश्चित नहीं कर सकी थी। इस काल में भारत में बहुत लड़ाई-झगड़े रहे। कितनी ही लड़ाइयाँ लड़ी गईं। यवनों के आक्रमण इसी काल में प्रारम्भ हुए। इससे हिन्दी-कविता के विकास को बड़ा धक्का पहुँचा और तत्कालीन कवियों ने जाति में शौर्य और वीरता के भावों को भरने के लिए चारण-काव्य या वीर-काव्य ही रचा। कुछ कवियों ने अपने आश्रय-दाता राजा-महाराजाओं की प्रशंसा के गीत गाए और कुछ ने उनको उद्बोधन देने तथा समर में जूझ जाने की प्रेरणा प्रदान करने के लिए अपनी प्रतिभा का सदुपयोग किया। इस काल की प्रमुख कृतियों में पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो तथा आल्ह-खण्ड प्रमुख हैं। चन्दबरदाई ही इस

चारण-काव्य के एक-मात्र उन्नायक माने जाते हैं। वैसे गोरखनाथ के कुछ काव्य-ग्रन्थ भी इसी काल में लिखे गए हैं।

भक्ति-काव्य

भक्ति-काव्य की धारा १३५० से १७०० तक हमारे साहित्य में अजस्र वेग से प्रवाहित हुई। क्योंकि इन दिनों तक देश के आन्तरिक और पारस्परिक विग्रह-विवाद शान्त हो चुके थे, और भारत का साम्राज्य एक सुदृढ़ तथा सुव्यवस्थित शक्ति के हाथों में आ गया था, अतः साहित्य में भी इसी समय बड़ा विकास हुआ। देश में शान्ति का वातावरण आने से कुछ पूर्व हिन्दी के कवियों ने भक्ति, ज्ञान और प्रेम की त्रिवेणी बहाई। इन भक्ति-प्रधान कवियों को हम सन्त कवि, प्रेममार्गी या सूफी कवि तथा सगुण भक्त कवि आदि नामों से पुकार सकते हैं। इन दिनों हिन्दी-कविता का बड़ा विकास हुआ और इसमें उच्चकोटि के साहित्य का निर्माण हुआ। इसी से इस काल को हिन्दी-कविता का 'स्वर्ण-युग' कहकर अभिहित करते हैं। इस समय कविता का माध्यम प्रमुखतः दो भाषाएँ थीं—अवधी और ब्रज ही उसके दो प्रमुख स्वरूप थे। सूफी काव्य के सर्वप्रथम उन्नायक मलिक मुहम्मद जायसी ने अवधी भाषा में ही अपने अमर काव्य 'पद्मावत' की रचना की और इसके पश्चात् हिन्दी-भाषा को उन्नति के उत्तुङ्ग शैल पर समारूढ़ करने वाले दो महाकवि प्रकाश में आए। दोनों का ही स्थान हिन्दी-साहित्य तो क्या विश्व-साहित्य में अमिट और अडिग है। वे हैं सूर और तुलसी। सूर ने सन् १५५० के लगभग अपने अमर काव्य 'सूर-सागर' द्वारा हिन्दी-कविता को समृद्ध किया। 'सूर-सागर' की भाषा ब्रजभाषा थी, सूर के इस भक्ति-सागर में अवगाहन करके सर्व साधारण जनता तथा कृष्ण के भक्तों ने खूब डुबकियाँ लगाईं। इसी समय गोस्वामी तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'रामचरितमानस' का निर्माण किया तथा अन्य फुटकर काव्य-ग्रन्थ भी लिखे। इनके 'मानस' की भाषा अवधी तथा 'विनय-पत्रिका' और 'कवितावली' की भाषा ब्रज थी।

इस युग में व्रजभाषा काव्य की रचना प्रचुर मात्रा में हुई और अवधी का धीरे-धीरे लोप होता चला गया। वल्लभाचार्य के प्रोत्साहन से बड़े-बड़े सुप्रसिद्ध महाकवियों ने व्रज-भाषा में उच्च कोटि का साहित्य प्रस्तुत किया। अष्टछाप के दूसरे महाकवि नन्ददास जी ने व्रज-भाषा में काव्य-रचना की तथा सुन्दरदास आदि कवियों ने भी व्रजभाषा को ही अपनाया।

सूर और तुलसी द्वारा प्रवर्तित इस भक्ति-काव्य की दो प्रमुख धाराएँ थीं—राम-भक्ति-धारा तथा कृष्ण-भक्ति-धारा। तुलसीदास राम-भक्ति के उन्नायक कवि थे और सूर कृष्ण-भक्ति के प्रचारक। कबीर ने केवल भक्ति-सम्बन्धी रचनाएँ ही लिखीं। वे राम और कृष्ण से ऊपर उठकर समाज की कुरीतियों पर कटु व्यंग्य करके उसके सुधारक एवं संवाहक बने। इस धारा के अन्य प्रमुख कवियों में रहीम, रसखान, नरोत्तमदास और मीराबाई मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं।

रीति-काव्य

रीति-काव्य की धारा का प्रचलन १७०० से होकर समाप्ति १९०० पर मानी जाती है। इस धारा के काव्य में अधिकांशतः रीति-ग्रंथ लिखे गए। इनमें नायक-नायिका-भेद, रसों तथा अलंकारों का विवेचन-पर्यालोचन प्रचुर मात्रा में हुआ। इस काल के कवियों ने अधिकांशतः स्फुट ग्रंथ ही लिखे और अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम मुक्तक-काव्य को बनाया। इस काव्य के कवियों में केशव, भूषण, बिहारी और मतिराम आदि प्रमुख हैं। इन्होंने भी अपनी रचनाओं में व्रजभाषा का ही अधिकांशतः प्रयोग किया। इस युग में शृङ्गार-सम्बन्धी कविताओं का ही प्राचुर्य रहा। रीति-काव्य के कोमलतम नख-शिख-वर्णन के प्रभाव से हिन्दी-साहित्य में स्त्रैण भावनाओं का जोर हो गया। इस काल के कवियों ने प्रेम और शृङ्गार सम्बन्धी-जो देन हिन्दी-साहित्य को दी वह केवल सराहनीय ही नहीं, प्रत्युत उनके व्यक्तित्व को मुखर करने वाली है।

नव-जागरण-काव्य

नव-जागरण-काव्य सन् १६०० से अब तक माना जाता है। इस काल की कविता को शुद्ध, परिष्कृत और सुदृढ़ करने का श्रेय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को है। उन्होंने हिन्दी-कविता को ब्रजभाषा से खड़ी बोली की ओर मोड़ा। यद्यपि इस युग में भी प्रारम्भ में खड़ी बोली में ब्रजभाषा के शब्दों का बाहुल्य रहा तथापि वह धीरे-धीरे दूर होता गया।

अँग्रेजों के शासन के कारण भारत में अज्ञान और दास्य का जो आवरण पड़ा हुआ था। भारतेन्दु ने उसे हटाकर नव-जागरण-काव्य का भैरवी शंख फूँका। परिणामतः जनता में राष्ट्रीयता की भावनाएँ उद्भूत हुईं और हमारे कवि रीति-काल की अतिशय शृङ्गारिक पद्धति को तिलांजलि देकर अपने नए-नए छन्दों के द्वारा नित-नूतन जागरण का सन्देश देने लगे। इस काल के कवियों का ध्यान देश-हित, राष्ट्र-हित समाज-सुधार तथा धर्म-सुधार की रचनाएँ करने की ओर अधिक गया।

युग के संवाहक भारतेन्दु

जैसा कि हम ऊपर लिख आए हैं कि इस नव-जागरण-काव्य के अग्रदूत एक-मात्र भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ही थे। उनकी कविता ने भाषा के नए स्वरूप को बनाने में पर्याप्त योग दिया था। उन्होंने अपनी रचनाओं में ब्रजभाषा के साथ-साथ बोल-चाल की भाषा को भी स्थान दिया। अपनी रचनाओं में वह पूर्णतया सुधारवादी के रूप में प्रकट हुए हैं। समाज में प्रचलित रूढ़ियों का विध्वंस करके उन्होंने सर्वथा नई मान्यताएँ प्रचलित कीं।

जगती में जातीय गौरव को पुनः स्थापित करने की उनकी भावना निश्चय ही अनुकरणीय है। भारतेन्दु के समकालीन अन्य कवि भी उनके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर हिन्दी-कविता की श्री-वृद्धि करने में संलग्न थे। सर्वश्री प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी, 'प्रेमघन' तथा अम्बिकादत्त व्यास आदि इसी वर्ग के कवियों में परि-

गणनीय हैं। इन सभी ही कृतिकारों ने अपनी रचनाओं में राष्ट्र-प्रेम और समाज-सुधार का सन्देश दिया था।

द्विवेदी-मण्डल

जिन दिनों भारतेन्दु हिन्दी-कविता और साहित्य को परिष्कार तथा प्रचार में संलग्न थे उन्हीं दिनों सन् १६०० ई० में 'सरस्वती' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। भारतेन्दु बाबू के कुछ समकालीन कवि भी उन दिनों राष्ट्र-भक्ति के गीत न गाकर राज-भक्ति के राग ही अलापते थे। 'सरस्वती' के प्रकाशन के अनन्तर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी-कविता के परिष्कार के लिए भगीरथ प्रयत्न किया। अब तक जो थोड़ी बहुत ब्रजभाषा हिन्दी-कविता में चली आ रही थी, उसे एकदम निष्कासित करके उन्होंने खड़ी बोली को पूर्णतः कविता का माध्यम बनाने का जोरदार आन्दोलन शुरू कर दिया। उन्होंने भाषा को व्याकरण-सम्मत और सुव्यवस्थित बनाने पर जोर दिया। द्विवेदीजी के इस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि ब्रजभाषा के कविता से निष्कासित कर दिए जाने पर उसका माधुर्य जाता रहा और तत्कालीन कविता कोरी उपदेश-सी ही जान पड़ने लगी। इनके समकालीन कवियों में सर्वश्री श्रीधर पाठक, रामचरित उपाध्याय और लोचनप्रसाद पाण्डेय आदि प्रमुख हैं।

राष्ट्रीय धारा

द्विवेदी-मण्डल द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलते हुए हम सर्वश्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी तथा रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों को देखते हैं। इनमें से श्री हरिऔध जी ने केवल जातीय गौरव को अभिवन्दित करने वाली कविताएँ ही रचीं। इन्होंने अपनी रचनाओं में दैनिक जीवन में व्यवहृत होने वाले मुहावरों तक को अपनाया। श्री मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी-कविता की राष्ट्रीय धारा के अग्रदूत माने जाते हैं। उनकी समस्त कृतियों में भारत के अतीत गौरव की झाँकी यत्र-तत्र देखने को मिलती है। हिन्दी-कविता

में राष्ट्रीय जागरण के उषः काल में गुप्त जी की भारत-भारती ने जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया था वह अविस्मरणीय है। सन् '२१ के सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के दिनों में तो 'भारत-भारती' का पाठ 'कारा' में बन्द सैनिकों ने 'गीता' की भाँति किया था, और उससे पर्याप्त जागृति भी हुई थी। गुप्त जी की रचनाओं में हमारे धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा राजनीतिक जागरण का अमिट सन्देश निहित है। श्री माखनलाल चतुर्वेदी एक 'भारतीय आत्मा' के नाम से हिन्दी-काव्य-जगत् में विख्यात हैं। आपने अधिकांश राष्ट्रीय रचनाएँ इसी नाम से लिखी हैं। आपके जीवन के अधिकांश क्षण ब्रिटिश नौकरशाही से लोहा लेने में ही व्यतीत हुए। द्विवेदी-मण्डल की राष्ट्रीय जागृति के सन्देश-वाहक कवि के रूप में आपका नाम स्तुत्य स्थान रखता है। किन्तु यह भी भूलने की बात नहीं कि इनकी राष्ट्रीयता में भी रहस्यवाद की झलक देखने को मिलती है। प्रकृति के चित्रण में जहाँ यह रहस्यवादी हैं वहाँ राष्ट्रीयता की झाँकी दर्शनीय है। प्रकृति और देश-प्रेम का यह अपूर्व सम्मिश्रण चतुर्वेदी जी एक विशेषता है। त्रिपाठी जी के देश-भक्तिपूर्ण खण्डकाव्यों का भी इस धारा के काव्य में प्रमुख स्थान है।

रहस्यवाद

धीरे-धीरे हिन्दी में अनेक परिवर्तन और परिवर्द्धन हुए। राष्ट्रीय-धारा के साथ-ही-साथ हिन्दी में मुक्तक गीतों का प्रचार हुआ और रवीन्द्र बाबू की 'गीतांजलि' के प्रभाव से भावुकता का प्राचुर्य भी हिन्दी-कविता में हुआ। इस प्रकार की रचना करने वाले कवियों में सर्वश्री जयशंकर 'प्रसाद', निराला, पन्त, महादेवी वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रसादजी हिन्दी-कविता में रहस्यवादी धारा के संवाहक कवि के रूप में विख्यात हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में रहस्यवाद की चरम परिणति देकर वस्तुतः हिन्दी-काव्य पर भारी उपकार किया था। सर्वथा निराली पद्धति पर रचना करने वाले श्री निराला जी अपनी काव्य-

प्रतिभा के लिए चिर-विख्यात हैं। वह हिन्दी के युगान्तरकारी कवि तो हैं ही, प्रत्युत ओज और प्रेम के भी सफल शिल्पी हैं। निराला जी बौद्धिक कलाकार हैं, पर उनकी बौद्धिकता अपनी प्रवृत्तियों में ही अन्तर्मुखी है। पन्त सौन्दर्य तथा कोमलता के अद्भुत शिल्पी हैं। उनका सौन्दर्य-बोध अनुपम है। पन्त ने भावों तथा कल्पना की सुकुमारता के साथ अपने छन्दों में शब्दों का जो गुम्फन किया है, वह नितान्त अद्भुत और प्रशंसनीय है। श्रीमती महादेवी वर्मा रहस्यवाद के कवियों में अपना विशेष स्थान रखती हैं। उनकी रचनाओं में वेदना संवेदनशील शैली में मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त हुई है। उनकी प्रवृत्ति भी वियोगिनी है, जो उनके भाव-जगत् में पूर्णतया समाविष्ट हो चुकी है। श्री भगवतीचरण वर्मा उन दीवाने कवियों में से हैं, जिनका जीवन ही कवितामय हो गया है। आपने अपनी अधिकांश रचनाओं में प्रेम और सौन्दर्य का चित्रण बड़ी ही मार्मिकता से किया है। वर्मा जी की कविता में जीवन में आग लगाने की प्रवृत्ति और संसार को प्रलय-धार में बहा देने की भावना प्रायः देखने को मिलती है। श्री रामकुमार वर्मा हिन्दी की रहस्यमयी परम्परा के पोषक कवियों में अपना विशेष स्थान रखते हैं। जीवन को एक नए दृष्टिकोण से देखकर उन अनुभूतियों को कविता में अभिव्यक्त करना ही उनके काव्य की इयत्ता है।

वेदनावाद

रहस्यवाद और छायावाद की सम्मिलित अनुभूतियों से आक्रान्त होकर एक नई प्रेरणा और कल्पना के कुछ कवि और हिन्दी में आए। इन सबकी अभिव्यक्ति का माध्यम, शब्दों का आकलन तथा भावों का गुम्फन अलग-अलग महत्ता रखता है। इन्हें किसी भी वाद या धारा के बन्धन में बाँधना एक भारी दुस्साहस का कार्य है। लेकिन हम इन्हें वेदनावादी धारा के अन्दर ही गृहीत करेंगे। इनमें सर्वश्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', उदयशंकर भट्ट, जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द,' हरिकृष्ण 'प्रेमी, हरिवंशराय 'बच्चन', रामधारीसिंह 'दिनकर', सुभद्राकुमारी चौहान आदि

प्रमुख हैं। इन कवियों ने वेदनावाद तथा हृदयवाद के गीत ही गाए हैं। इसके साथ-साथ इन सब कवियों का एक दूसरा रूप भी है। इन्होंने राष्ट्रीय जागरण-सम्बन्धी रचनाएँ भी की हैं। उन रचनाओं का भी अपना अलग अस्तित्व है।

'नवीन' जी की कविता राष्ट्रीय उत्क्रान्ति-काल की सन्देश-वाहिका तो है हो, साथ ही उन्होंने जीवन की रंगीनियों से ओत-प्रोत मादक वेदनावादी गीतों की धारा भी अजस्र वेग से प्रवाहित की है। उनका दोनों ही प्रकार की भावना, कल्पना तथा साधना पर समान अधिकार है। भट्ट जी हिन्दी के हृदयवादी कवि हैं। आपकी रचनाएँ गहरी दार्शनिकता एवं निराशा से परिपूर्ण होती हैं। कहीं-कहीं आपने समाज में प्रचलित थोथे अध्यात्मवाद और रूढ़ियों का खण्डन भी बड़ी ही मार्मिकता से किया है। 'मिलिन्द' जी जीवन और जागृति के सन्देश-वाहक कवि के रूप में विख्यात हैं। कुछ दिन तक आपने वेदना और प्रेम से अनुप्राणित कविताएँ भी की थीं। आजकल आपकी रचनाओं में समाजवादी तत्त्व अधिक पाए जाते हैं। 'प्रेमी' जी हिन्दी के वेदनावादी कवि और नाटककार हैं। आपकी कविता का जन्म वेदना से हुआ है। जिसमें प्रेम-पथ की गम्भीर अनुभूतियाँ सरल और मार्मिक ढंग से अभिव्यंजित की जाती हैं। 'बच्चन' जी वैसे हालावादी कवि के रूप में चिर-विख्यात हैं, परन्तु आपकी प्रायः सारी ही कृतियों में वेदना का बाहुल्य दृष्टिगत होता है। आपने छायावाद और रहस्यवाद के काव्य में डूबी हुई जनता को अपने काव्य से नवीन चेतना तथा स्फूर्ति दी। 'दिनकर' यद्यपि ओज और तारुण्य के गायक हैं, तथापि उनकी 'रसवन्ती' पहले-पहल उनका वेदनावादी रूप ही लेकर अवतरित हुई है। बाद में उनकी कविता ने अँगड़ाई ली और आप वीरता तथा ओज के सर्जक कवि के रूप में विख्यात हुए। सुभद्राकुमारी चौहान की ख्याति उनकी 'झाँसी की रानी' कविता के कारण है। किन्तु उन्होंने प्यार और वेदना के परिचायक गीत तथा कविताएँ भी बहुत सुन्दर की थीं।

प्रगतिवाद : प्रयोगवाद

हिन्दी-साहित्य की पुरानी परम्परा के अनुसार धीरे-धीरे हिन्दी-कविता तथा साहित्य ने एक नया उभार लिया और हमारी कविता में प्रगतिवादी तत्त्व निखरे। इस काल में यद्यपि सब तरह की रचनाएँ हुईं, तथापि इनको हम प्रगति-काल के नाम से ही अभिहित करते हैं। इस काल के उल्लेखनीय कवियों में सर्वश्री नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल, 'अंचल', शिवमंगलसिंह 'सुमन', जानकीवल्लभ शास्त्री, हंसकुमार तिवारी, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन तथा पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' आदि के नाम लिये जा सकते हैं। उक्त सभी कवि अपनी-अपनी विशेषताओं के लिए विख्यात हैं। इधर प्रगतिवादी कविता की चरम परिणति प्रयोग-वादी रचनाओं में आकर हुई है। इस प्रकार के प्रयोगवादी काव्य के प्रतिनिधि कवि सर्वश्री अज्ञेय, धर्मवीर भारती, भवानीप्रसाद मिश्र, गिरिजाकुमार माथुर, नेमिचन्द्र, प्रभाकर माचवे, नरेशकुमार मेहता तथा रघुवीरसहाय आदि मुख्य हैं। जहाँ इस युग में प्रगतिवादी रचनाएँ हुईं वहाँ यह नहीं समझ लेना चाहिए कि दूसरे प्रकार की काव्य-रचना सर्वथा होनी बन्द हो गई। अनेक कवि अपनी-अपनी क्षमता के अनुरूप हिन्दी-काव्य की अभिवृद्धि करने में संलग्न हैं इस प्रकार के कवियों में सर्वश्री सोहनलाल द्विवेदी, सुमित्रा कुमारी सिनहा, विद्यावती 'कोकिल', श्यामनारायण पाण्डेय, 'आरसी' आदि के नाम लिये जा सकते हैं। हिन्दी-कविता के प्रारम्भ और विकास की यही छोटी-सी कहानी है।

क्रम

१. कबीरदास १
साखी
सबद
२. सूरदास ६
कृष्ण का बाल-रूप
भक्ति
विरह-वर्णन
३. तुलसीदास १२
भ्रातृ-प्रेम
भरत-कौशल्या-संवाद
निषाद-भक्ति
चित्रकूट-निवास
राम-भक्ति
कुछ दोहे
४. मीराबाई २६
श्रीकृष्ण-प्रेम
विरह-वेदना
उपदेशात्मक पद
भक्ति-माहात्म्य
५. नरोत्तमदास ३१
सुदामा-चरित
६. रहीम ३५
दोहे
अन्योक्ति
७. रसखान ३८
मंगलाचरण
दोहे
फुटकर
८. बिहारीलाल ४३
भक्ति
नीति
अन्योक्ति
सौन्दर्य
प्रकृति
९. भूषण ४७
शिवाजी का पराक्रम
शिवाजी की नीति
हिन्दुत्व-रक्षा
यश-श्वेतिमा
छत्रसाल की दानशीलता
१०. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ५२
भारत-दुर्दशा

आह्वान
यमुना-वर्णन
पद
११. श्रीधर पाठक ५७
सु-सन्देश
देश-गीत
काश्मीर-सुषमा
१२. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ६२
कर्मवीर
फूल और काँटा
अनूठी बातें
निजता
राधा की लोक-सेवा
१३. मैथिलीशरण गुप्त ७२
अभिमन्यु का रण-गमन
कैकेयी का पश्चात्ताप
राहुल-जननी
१४. जयशंकर प्रसाद ८२
हमारा देश
भारतवर्ष
अशोक की कलिंग-विजय
किरण
गीत
अभियान-गीत
१५. माखनलाल चतुर्वेदी ९३
पुष्प की अभिलाषा
भारतीय विद्यार्थी
अमर राष्ट्र
१६. श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ९८
बचपन
वीरों का वसन्त
झाँसी की रानी
१७. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' १०८
आओ नव निर्माण करें
हिन्दुस्थान हमारा है
विप्लव-गायन
मेरे मधुमय स्वप्न रँगीले
१८. श्री रामनरेश त्रिपाठी ११५
वह देश कौन-सा है ?
ग्राम-शोभा
अन्वेषण
देश-सेवा
१९. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' १२७
जय
जागो फिर एक बार
भिक्षुक
२०. सुमित्रानन्दन पन्त १३१
ज्योति भारत
मंगलमय
छाया

जग-जीवन
२१. महादेवी वर्मा १३५
सुरझाया हुआ फूल
पपीहा
दीपक जल
कदली
एक गीत
२२. रामकुमार वर्मा १४२
पतझड़
कामना
आत्मा की स्मृति
तुम्हारी याद
ये गजरे तारों वाले
२३. हरिवंशराय बच्चन १४७
पथ की पहचान
मिलन-यामिनी
माँग रहे हैं समाधान
आजादी का गीत
२४. रामधारीसिंह 'दिनकर' १५५
जवानी का झण्डा
बापू
हिमालय के प्रति
जनता और जवाहर
२५. नरेन्द्र शर्मा १६६
देवली की दुनियाँ
हिन्दू-मुसलमान
२६. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' १७१
जन-जन के मन में
नव संस्कृति से
२७. शिवमंगलसिंह 'सुमन' १७२
जीवन और गीत
छोड़कर नगरी तुम्हारी
जा रहा हूँ

१

कबीर

साखी

ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
अपना मन सीतल करै, औरन को सुख होय ॥१॥
ऊँचे कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होय।
सुबरन कलस सुरा भरा, साधो निंदा सोय ॥२॥
पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ॥३॥
साईं से सब होत है, बंदे से कछु नाहिं।
राई से परबत करै, परबत राई माहिं ॥४॥
दोष पराए देखि करि, चला हसंत हसंत।
अपने चित्त न आवई, जिनको आदि न अंत ॥५॥
माला फेरत जग मुआ; मिटा न मन का फेर।
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर ॥६॥
केसन कहा बिगारिया, जौ मूँड़ौ सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूँड़िये; जामै विषै-विकार ॥७॥
रात गँवाई सोय करि, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥८॥
कबिरा आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय ॥९॥
अवगुन मेरे बाप जी, बकसु गरीब निवाज।
जो मैं पूत कपूत हूँ, तऊ पिता को लाज ॥१०॥

सिख तो ऐसा चाहिए, गुरु को सब-कुछ देय।
गुरु तो ऐसा चाहिए, सिख से कछु नहिं लेय ॥११॥
कबिरा संगति साधु की, हरै और की व्याधि।
संगति बुरी असाधु की, आठों पहर उपाधि ॥१२॥
दया दिल में राखिये, तू क्यों निरदय होय।
साईं के सब जीव हैं, कीरी कुञ्जर दोय ॥१३॥
जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठ ॥१४॥
साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं विचार।
हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार ॥१५॥
माखी गुड़ में गड़ि रही, पंख रह्यो लिपटाय।
हाथ मलै औ सिर धुनै, लालच बुरी बलाय ॥१६॥
मूरख को समझावते, ज्ञान गाँठ को जाय।
कोयला होय न ऊजला, सौ मन साबुन खाय ॥१७॥
प्रेम प्रीत से जो मिलै, तासों मिलिए धाय।
अंतर राखे जो मिलै, तासों मिलै बलाय ॥१८॥
पापी भगति न पावई, हरि-पूजा न सुहाइ।
माखी चंदन परहरै, जहँ बिगंध तहँ जाइ ॥१९॥
जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, साँस लेत बिन प्रान ॥२०॥
सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय।
सात समुन्दर मसि करूँ, गुरु-गुन लिखा न जाय ॥२१॥
लूटि सकै तौ लूटियौ, राम-नाम है लूटि।
पीछे फिर पछिताहुगे, यह तन जैहै छूटि ॥२२॥
कबिरा सोई पीर है, जो जाने पर-पीर।
जो पर-पीर न जानई, सो काफिर बे-पीर ॥२३॥

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविंद दियो मिलाय ॥२४॥

सबद

(१)

नाम सुमिर, पछतायगा।
पापी जियरा लोभ करत है आज काल उठि जायगा॥
लालच लागि जनम गँवाया माया भरम भुलायगा।
धन जोबन का गरब न कीजै कागद ज्यों गलि जायगा॥
जब जम आइ केस गहि पटकै ता दिन कछु न बसायगा।
सुमिरन भजन दया नहिं कीन्हो तो मुख चोटा खायगा॥
धरमराज जब लेखा माँगे क्या मुख लेकै जायगा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, साधु-संग तरि जायगा॥

(२)

साधो यह तन ठाठ तँबूरे का।
ऐंचत तार मरोरत खूँटी निकसत राग हजूरे का।
टूटे तार बिखर गई खूँटी हो गया धूरम धूरे का॥
या देही का गरब न कीजै उड़ि गया हंस तँबूरे का।
कहत 'कबीर' सुनो भइ साधो अगम पंथ कोई सूरे का॥

(३)

करम गति टारे नाहिं टरी।
मुनि वसिष्ठ से पण्डित ज्ञानी सोध के लगन धरी।
सीता हरन मरन दसरथ को वन में विपति परी॥
कहँ वह फंद कहाँ वह पारधि कहँ वह मिरग-चरी।
नीच हाथ हरिचंद बिकाने बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नृप पुन्न करत नित गिरगिट जोनि परी॥

पांडव जिनके आपु सारथी तिन पर बिपति परी।
दुरजोधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी॥
राहु केतु औ' भानु, चन्द्रमा विधि संजोग परी।
कहत 'कबीर' सुनो भइ साधो होनी होके रही॥

(४)

बीत गए दिन भजन विना रे।
बाल अवस्था खेल गँवायौ, जब जवानि तब मान किया रे॥
काहे कारन मूल गँवायो, अजहुँ न मिटी तेरे मन की तृपना रे॥
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, पारि उतरि गये सन्त जना रे॥

(५)

यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है।
यह संसार काँट की बाड़ी, उलझ-पुलझ मर जाना है॥
यह संसार झाड़ और झाँखर, आग लगे बरि जाना है।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, सतगुर नाम ठिकाना है॥

(६)

मन लागो मेरो यार फकीरी में।
जो सुख पावों राम भजन में सो सुख नाहिं अमीरी में।
भला बुरा सबको सुनि लीजै, कर गुजरान गरीबी में॥
प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बन आइ सबूरी में।
हाथ में कूँडी बगल में सोटा, चारों दिसा जगीरी में॥
आखिर यह तन खाक मिलैगा, कहा फिरत मगरूरी में।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, साहिब मिलै सबूरी में॥

(७)

पानी बिच मीन पियासी!
मोहि सुनि-सुनि आवत हाँसी॥
आतम ग्यान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या कासी।
घर में वसत घरी नहिं सूझै, बाहर खोजन जासी॥

म्रिग की नाभि माहिं कसतूरी, बन-बन फिरत उदासी ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सहज मिलै अविनासी ॥

(८)

लोका मति का भोरा रे ।
जौ कासी तन तजै कबीरा, तौ रामहिं कहा निहोरा रे ॥
तब हम वैसे अब हम ऐसे, इहै जनम का लाहा ।
ज्यूँ-ज्यूँ जल में पैसि न निकसै, यूँ दुरि मिल्या जुलाहा ॥
राम भगति पर जाको हित चित, ताकौ अचरज काहा ।
गुरु-प्रसाद, साधु की संगति, जग जीतै जाइ जुलाहा ॥
कहे 'कबीर' सुनहु रे संतो, भरमि परै जनि कोई ।
जस कासी तस मगहर ऊसर, हिरदै राम सति होई ॥

२

सूरदास

कृष्ण का बाल-रूप

(१)

सिखवति चलन जसोदा मैया।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया ॥
कबहुँक सुन्दर बदन बिलोकति उर आनन्द भरि लेत बलैया।
कबहुँक कुल-देवता मनावति चिरजीवहु मेरो कुँवर कन्हैया ॥
कबहुँक बल कौं टेरि बुलावति इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसती नँदरैया ॥

(२)

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद के आँगन बिंब पकरिवैं धावत।
कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौ कर सौं पकरन चाहत ॥
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत।
कनक भूमि पर कर-पग-छाया यह उपमा एक राजति ॥
करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि वसुधा कमल बैठकी साजति।
बाल दसा सुख निरखि जसोदा पुनि-पुनि नंद बुलावति ॥

(३)

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरनि चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किये ॥
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिये।
लट लटकनि मनु मत्त मधुपगन मादक मधुहिं पिये ॥

कठुलाकंठ, वज्र केहरि नख राजत रुचिर हिये।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख का सतकल्प जिये॥

(४)

जेवत स्याम नन्द की कनियाँ।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत छवि निरखत नँदरनियाँ॥
बरी, बरा, बेसन बहु भाँतिनि व्यंजन विविध अगनियाँ।
डारत खात लेत अपनैं कर रुचि मानत दधि दोनियाँ॥
मिश्री दधि माखन मिश्रित कर मुख नावत छवि धनियाँ।
आपुन खात नन्द मुख नावत सो छवि कहत न बनियाँ॥
जो रस नन्द जसोदा विलसत, सो नहिं तिहूँ भुवनियाँ।
भोजन करि नँद अचमन लीन्हों माँगत सूर जुठनियाँ॥

(५)

मैया मेरी, मैं नहिं माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पीछे मधुवन मोहिं पठायो।
चार पहर बंशीवट भटक्यों साँझ परे घरि आयो॥
मैं बालक बहियन को छोटो छींका कहि विधि पायो।
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं बरबस मुख लपटायो॥
तू जननी मति की अति भोरी इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उपज है जान परायो जायो॥
यह ले अपनी लकुटि कमरिया बहुतहि नाच नचायो।
'सूरदास' तब बिहसि जसोदा लै उर कण्ठ लगायो॥

(६)

आज मैं गाय चरावन जैहों।
वृन्दावन के भाँति-भाँति फल अपने कर तैं खैहों॥
ऐसी अबहिं कहौ जन बारे देखौ अपनी भाँति।
तनिक-तनिक पग चलिहौ कैसे आवत ह्वै है राति॥
प्रात जात गैया लै चारन घर आवत है साँझ।

तुम्हरो कमल बदन कुम्हिलैहै रँगत घामहिं माँझ ॥
तेरी सौं मोंहिं घाम न लागत भूख नहीं कछु नेक।
'सूरदास' कछु कह्यौ न मानत परे आपनी टेक ॥

(७)

मैया बहुत बुरौ बलदाऊ।
कहन लग्यौ, बन बड़ो तमासा सब मौंडा मिलि आऊ ॥
मौहू कौ चुपकारि गयौ लै जहाँ सघन बन झाऊ।
भागि चल्यौ, कहि गयौ वहाँ से काट खाइ रे हाऊ ॥
हौं डरपौं अरु रौऔं, काँपौं, कोउ नहिं धीर-धराऊ!
उनके संग न भाजि सकौं, ये भाजे जात अगाऊ ॥
मोसों कहत चोर तू कान्हा, आपु कहावत साहू।
'सूरदास' बल बड़ौ चवाई तैसेहिं मिले सखाहू ॥

(८)

मैया मोंहिं दाऊ बहुत खिझायौ।
मोंसौ कहत मोल कौ लीन्हौं, तू जसुमति कब जायौ ॥
कहा कहौं, इहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरो तात ॥
गोरे नन्द जसोदा गोरी तू कत स्याम सरीर।
चुटकी दै-दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर ॥
तू मोही को मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन-मुख रिस की वह बातैं, जसुमति सुनि-सुनि रीझै ॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही को धूत।
'सूर' स्याम मोहि गोधन की सौं, हौं माता तू पूत ॥

(९)

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पियत भइ यह अजहूँ है छोटी ॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वैहै लाँबी मोटी।

काढ़त गुहत नहावत ओछत नागिन सी भ्वैं लोटी ॥
काचो दूध पियावत पचि-पचि देत न माखन-रोटी।
'सूर' स्याम चिर जीवो दोऊ भैया हरि हलधर की जोटी ॥

(१०)

खेलन अब मेरी जात बलैया।
जबहिं मोहि देखत लरिकन सँग तबहिं खिझत बल भैया ॥
मोसो कहत तात वसुदेव कों देवको तेरी मैया ।
मोल लियो कछु दे वसुदेव को करि-करि जतन बड़ैया ॥
अब बाबा कहि कहत नंद को जसुमति को कह मैया ।
ऐसेहि कहि सब मोहि खिझावत तब उठि चलो खिसैया ॥
पीछे नन्द सुनत हैं ठाढ़े हँसत-हँसत उर लैया ।
'सूर' नन्द बलरामहिं धारयौ सुनि मन हरख कन्हैया ॥

भक्ति

(१)

छाँड़ि मन हरि विमुखन को सग।
जिनके संग कुबुधि उपजत है परत भजन में भंग ॥
कहा होत पय पान कराये विष नहिं तजत भुजंग ।
कागहि कहा कपूर चुगाये स्वान न्हवाहे गंग ॥
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषण अंग ।
गज को कहा न्हवावे सरिता वहुरि धरै सिर छंग ॥
पाहन पतित बाँस नहिं वेधत रीतो करत निषंग ।
'सूरदास' खल कारी कमरी चढ़त न दूजो रंग ॥

(२)

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पै आवै ॥

कमलनैन को छाड़ि महातम और देव को ध्यावै ।
परम गंग कों छाँड़ि पियासौ दुर्मति कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अम्बुज-रस चाख्यौ क्यों करील-फल खावै ।
'सूरदास' प्रभु कामधेन, तजि छेरी कौन दुहावै ॥

विरह-वर्णन

(१)

ऊधो मन नाहीं दस-बीस ।
एक हुतो सो गयौ स्याम सँग, को अवराधै ईस ॥
सिथिल भई सबहीं माधौ बिनु जथा देह बिनु सीस ।
स्वासा अटकि रही आसा लगि जीवहिं कोटि बरीस ॥
तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के, सकल जोग के ईस ।
'सूरदास' रसिकन की बतियाँ पुरवौ मन जगदीस ॥

(२)

अँखियाँ हरि-दरसन की भूखी ।
कैसे रहैं रूप-रस राँची ये बतियाँ सुनि रूखी ॥
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब ये तौ नहिं भूखी ।
अब इन जोग सँदेसनि ऊधो, अति अकुलानी दूखी ॥
बारक वह मुख फेरि दिखावहु दुहि पय पिवत पतूखी ।
'सूर' जोग जनि नाव चलावहु ये सरिता है सूखी ॥

(३)

ऊधो हमहिं कहा समझावहु ।
पसु पंछी, सुरभी ब्रज की सब देख स्रवन सुनि आवहु ॥
तृन न चरत गो, पिवत न सुत पय, ढूँढ़त बन-बन डोलैं ।
अलि कोकिल जे आदि विहंगम, भीत भयानक बोलैं ॥

जमुन भई तन स्याम , स्याम बिनु, अन्ध छीन जे रोगी।
तरुवर पत्र बसन न सँभारत, विरह वृच्छ भये योगी॥
गोकुल के सब लोग दुखित हैं, नीर बिना ज्यों मीन।
'सूरदास' प्रभु प्रान न छूटत, अवधि आस के लीन॥

(४)

ब्रज के विरही लोग दुखारे
बिन गोपाल ठगे-से ठाढ़े अति दुर्बल तनु कारे॥
नन्द जसोदा मारग जोवत नित उठि साँझ सकारे।
चहुँ दिसि कान्ह-कान्ह के टेरत अँसुअन बहत पनारे॥
गोपी गाइ ग्वाल गो-सुत सब अतिही दीन विचारे।
'सूरदास' प्रभु बिन यों सोभित चन्द्र बिना ज्यों तारे॥

(५)

प्रीति करि काहू सुख न लह्यौ।
प्रीति पतङ्ग करी दीपक सों, आपै देह दह्यौ॥
अलि-सुत प्रीति करी जल-सुत सों, संपुट माँझ गह्यौ।
सारंग प्रीति करी वंसी सों, सनमुख बान सह्यौ॥
हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछू कह्यौ।
'सूरदास' प्रभु बिन दुख-पावति नैनन नीर बह्यौ॥

३

तुलसीदास

भ्रातृ-प्रेम

समाचार जब लछिमन पाए ।
व्याकुल विलप बदन उठ धाए ॥
कंप पुलक तन नयन सरीरा ।
गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥
कहि न सकत कछु चितवन ठाढ़े ।
मीन दीन जनु जल तें काढ़े ॥
राम विलोकि बंधु कर जोरे ।
देह गेह सब सन तृनु तोरे ॥
बोले बचन राम नयनागर ।
सील-सनेह-सरल सुखसागर ॥
मातु पिता-गुरु-स्वामी सिख, सिर धरि करहिं सुभाय ।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, नतरु जनमु जग जाय ॥
अस जिय जानि सुनहु सिख भाई ।
करहु मात-पितु-पद-सेवकाई ॥
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं ।
राउ वृद्ध, मम दुःख मन माहीं ॥
मैं वन जाउँ तुम्हहिं ले साथा ।
होइ सबहि विधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मात प्रजा परिवारू ।
सब कहँ परै दुसह-दुख भारू ॥

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी ।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
सिअरे बचन सूखि गए कैसे ।
परसत तुहिन तामरस जैसे ॥
उतर न आवत प्रेम-बस, गहे चरन अकुलाइ ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह, तजहु त काह बसाइ ॥
दीन्ह मोहि सिख नीकि गोसाईं ।
लागि अगम अपनी कदराईं ॥
मैं सिसु प्रभु-सनेह-प्रतिपाला ।
मंदरु मेरु कि लेहिं मराला ॥
गुरु-पितु मातु न जानौं काहू ।
कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी ।
दीनबन्धु उर-अंतरजामी ॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही ।
कीरति-भूति-सुगति प्रिय जाही ॥
मन-क्रम-बचन चरन-रत होई ।
कृपासिन्धु परिहरिअ कि सोई ॥
करुनासिंधु सुबंधु के, सुनि मृदु बचन बिनीत ।
समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत ॥

भरत-कौशल्या संवाद

भरतहिं देखि मातु उठि धाई ।
मुरुछित अवनि परी झइँ आई ॥
देखत भरतु बिकल भए भारी ।
परे चरन तनदसा बिसारी ॥

कइकइ कत जनमी जग माँझा।
जौं जनमित भइ काहे न बाँझा॥
कुल-कलंकु जेहि जनमेउ मोही।
अपजस-भाजन प्रिय-जन-द्रोही॥
को त्रिभुवन मोहिं सरिस अभागी।
गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥
पितु सुरपुर, वन रघुवर-केतू।
मैं केवल सब अनरथ हेतू॥
धिग मोहि भयेउँ वेनु वन-आगी।
दुसह-दाह - दुख-दूषन-भागी॥
मातु भरत के वचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिये उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति वारि॥
सरल सुभाय माय हिय लाए।
अतिहित मनहुँ राम फिरि आए॥
भेंटेउ बहुरि लषन लघु-भाई।
सोकु सनेहु न हृदय समाई॥
देखि सुभाउ कहत सब कोई।
राम मातु अस कहे न कोई॥
माता भरतु गोद बैठारे।
आँसु पोंछि मृदु वचन उचारे॥
अजहुँ वच्छु, वलि, धीरज धरहू।
कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हिय हानि गलानी।
कालकरम गति अघटित जानी॥
काहुहि दोस देहु जनि ताता।
भा मोहिं सम विधि वाम विधाता॥
मातु तात कहँ देहि देखाई।
कहँ सिय रामु लषनु दोउ भाई॥

जो एतेहु दुख मोहि जिआवा।
अजहुँ का जाने का तोहि भावा॥
पितु आयुसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
विषमय हरप न हृदय कछु पहिरे वलकल चीर॥
मुख प्रसन्न मन रंग न रोपू।
सब कर सब विधि कर परितोपू॥
चले विपिन सुनि सिय संग लागी।
रहैं न राम चरन अनुरागी॥
सुनतहि लपनु चले उठि साथा।
रहहिं न जतन किये रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई।
चले संग सिय अरु लघु भाई॥
राम लपनु सिय बनहिं सिधाये।
गयउँ न संग प्रान पठाये॥
एहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगे।
तउ न तजा तनु जीव अभागे॥
मोहि न लाज निज नेहु निहारी।
राम सरिस सुत मैं महतारी॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना।
मोर हृदय सत-कुलिस-समाना॥
कौसल्या के वचन सुन भरत सहित रनिवासु।
व्याकुल विलपत राजगृह मानहुँ सोक-निवासु॥
विलपहिं विकल भरत दोउ भाई।
कौसल्या लिये हृदय लगाई॥
भाँति अनेक भरतु समुझाये।
कहि विवेकमय वचन सुनाये॥

भरतहु मातु सकल समझाई।
कहि पुरान स्रुति कथा सुनाई॥
छल विहीन सुचि सरल सुबानी।
बोले भरत जोरि जुग पानी॥
जे अघ मातु-पिता-सुत मारें।
गाइगोठ महि सुरपुर जारें॥
जे अघ तिय-बालक बध कीन्हें।
मीत महीपत माहुर दीन्हें॥
जे पातक उपपातक अहहीं।
करम बचन मन भव कवि कहहीं॥
ते पातक मोहि होहु बिधाता।
जौं एहु होइ मोर मत माता॥
जे परिहरि-हरि हंस चरन भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कै गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर॥
बेचहिं बेदु धरम दुहि लेहीं।
पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी।
बेद-बिदूषक बिश्व-बिरोधी॥
लोभी लंपट लोलुपचारा।
जे ताकहिं परधनु परदारा॥
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा।
जौं जननी एहु संमत मोरा॥
जे नहिं साधु-संग अनुरागे।
परमारथ-पथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई।
जिन्हहिं न हरि हर सुजसु सुहाई॥

तजि स्रुतिपन्थ वामपथ चलहीं।
वंचक बिरचि वेषु जगु छलहीं॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ।
जननी जौं एहु जानौं भेऊ॥
मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभाय।
कहति रामप्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन काय॥
राम प्रान ते प्रान तुम्हारे।
तुम रघुपतहिं प्रान तें प्यारे॥
बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी।
होइ वारिचर बारिबिरागी॥
भए ज्ञान बरु मिटै न मोहू।
तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार एहु जग कहहीं।
सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥
अस कहि मातु भरतु हिय लाए।
थनपय स्रवहिं नयन जल छाए॥

निषाद-भक्ति

बरबस राम सुमंत पठाये।
सुरसरि तीर आपु तब आये॥
माँगी नाव न केवट आना।
कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन-कमल-रज कहँ सब कहईं।
मानुष करनि मूरि कछु अहईं॥
छुवत सिला भइ नारि सुहाई।
पाहन ते न काठ कठिनाई॥

तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई।
बाट परै मोरि नाव उड़ाई॥
एहि प्रतिपालउँ सब परिवारू।
नहिं जानौं कछु अवर कवारू॥
जौ प्रभु पार अवसि गा चहहू।
मोहि पद-पदुम पखारन कहहू॥
पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नेक उतराई चहौं।
मोहि राम राउर आन दसरथ सपथ सब साँची कहौं॥
बरु तीर मारहु लखन पै जब लगि न पाँय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पार उतारिहौं॥
सुनि केवट के बचन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना अयन, चितय जानकी लषन तनु॥
कृपासिंधु बोले मुसकाई।
सोइ करु जेहि तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाँय पखारू।
होत बिलंब उतारहिं पारू॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा।
उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहिं निहोरा।
जेहि जग किए तिहुँ पगहु ते थोरा॥
पद नख निरखि देवसरि हरषी।
सुनि प्रभु वचन मोह मति करषी॥
केवट राम रजायसु पावा।
पानि कठवता भरि लेइ आवा॥
अति आनंद उमगि अनुरागा।
चरन सरोज पखारन लागा॥

बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं।
यहि सम पुन्य पुंज कोउ नाहीं॥
पद पखारि जलपान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभुहिं पुनि, मुदित गएउ लै पार॥
उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता।
सीय राम गुह लखन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा।
प्रभुहि सकुच यहि नहिं कछु दीन्हा॥
पिय हिय की सिय जाननिहारी।
मनि मुँदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपालु लेहि उतराई।
केवट चरन गहे अकुलाई॥
नाथ आज मइँ काह न पावा।
मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
बहुत काल मइँ कीन्हि मँजूरी।
आज दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी॥
अब कुछ नाथ न चाहिय मोरे।
दीनदयाल अनुग्रह तोरे॥
फिरती बार मोहि जोइ देवा।
सो प्रसाद मइँ सिरधरि लेवा॥
बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय, नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनानयन, भगति बिमल बर देइ॥

चित्रकूट-निवास

आइ रहे जब ते दोउ भाई।
तब ते चित्रकूट-कानन छबि

दिन-दिन अधिक-अधिक अधिकाई।
सीता राम-लखन-पद-अंकित
अवनि सोहावनि बरनि न जाई।
मंदाकिनि मज्जत अवलोकत
त्रिविध-पाप-भय ताप नसाई।
उकठेउ हरित भए जल-थलरुह
नित नूतन राजीव सुहाई।
फूलत फलत पल्लवित पलुहत
बिटप बेलि अभिमत सुखदाई।
सरित सरनि सरसीरुह-संकुल
सदन सँवारि रमा जनु छाई।
कूजत विहँग, मंजु गुंजत अलि
जात पथिक जनु लेत बुलाई।
त्रिविध समीर नीर झर झरननि
जहँ-तहँ रहे ऋषि कुटी बनाई।
सीतल सुभग सिलनि पर तापस
करत जोग जप-तप मन लाई।
भए सब साधु किरात किरातनि,
राम दरस मिटि गई कलुपाई।
खग मृग मुदित एक संग विहरत
सहज विषम बड़ वैर विहाई।
कामकेलि बाटिका बिबुध-बन
लघु उपमा कवि कहत लजाई।
सकल भुवन सीमा सकेलि मनौ
राम विपिन विधि आन बसाई।
बन मिस मुनि, मुनितिय, मुनिबालक
बरनत रघुवर-विमल बड़ाई।

पुलक सिथिल तनु, सजल सुलोचनु
प्रमुदित मन जीवन फलु पाई।
क्यों कहौं चित्रकूट-गिरि सम्पति
महिमा मोद मनोहरताई।
तुलसी जहँ बसि लखन राम सिय
आनन्द-अवधि अवध बिसराई।

राम-भक्ति

(१)

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज-हारी ॥१॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मौसो?
मो समान आरत नहिं, आरति हर तोसो ॥२॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो।
तात, मात, गुरु, सखा तू सब विधि हितु मेरो ॥३॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरन-सरन पावै ॥४॥

(२)

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम-भक्ति-सुर सरिता आस करत ओसकन की ॥१॥
धूम-समूह निरखि चातक ज्यों, तृपित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न वारि, पुनि हानि होत लोचन की ॥२॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस, छति बिसार आनन की ॥३॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि, जानत हौ गति जन की।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की ॥४॥

(३)

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस बिश्वास भरोसो, हरौ जीव जड़ताई ॥१॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै, अनुदित अधिकाई ॥२॥
कुटिल करम लै जाइ मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़िये, कमठ, अंड की नाईं ॥३॥
या जग में जहँ लगि या तनु की, प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसीदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं ॥४॥

(४)

जानकी-जीवन की बलि जैहौं।
चित कहै, रामसीय-पद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहौं ॥१॥
उपजी उर प्रतीति सपनेहुँ सुख, प्रभु-पद-बिमुख न पैहौं।
मन समेत या तनु के बासिन्ह, इहै सिखावन दैहौं ॥२॥
स्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नैन बिलोकत औरहिं सीस ईस ही नैहौं ॥३॥
नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह बहैहौं।
यह छर भार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं ॥४॥

(५)

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
सो छाँड़िये कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥१॥
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितनि, भये मुद मंगलकारी ॥२॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥३॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद एतो मतो हमारो ॥४॥

(६)

रघुवर ! तुमको मेरी लाज ।
सदा सदा मैं सरन तिहारी, तुम बड़े गरीबनिवाज ॥
पतित उधारन विरुद तिहारो, स्रवनन सुनि आवाज ।
हौं तो पतित पुरातन कहिये, पार उतारो जहाज ॥
अघ खंडन, दुख-भंजन-जन के, यही तिहारो काज ।
तुलसीदास पर किरपा करिये, भक्ति-दान देहु आज ॥

(७)

भज मन राम चरण सुखदाई ॥
जिहि चरनन ते निकसी सुरसरी संकर जटा समाई ।
जटासंकरी नाम पर्यो है, त्रिभुवन तारन आई ॥
जिन चरनन की चरनपादुका, भरत रह्यो लव लाई ।
सोई चरन केवट धोये लीनें, तब हरि नाव चलाई ॥
सोई चरन संतन जन सेवत, सदा रहत सुखदाई ।
सोई चरन गौतमऋषि नारी, परसि परमपद पाई ।
दंडक वन प्रभु पावन कीन्हो, ऋषियन त्रास मिटाई ।
सोई प्रभु त्रिलोक के स्वामी, कनक मृगा संग धाई ॥
कपि सुग्रीव बन्धु-भय-व्याकुल, तिन जय छत्र फिराई ।
रिपु को अनुज विभीषण निसिचर, परसत लंका पाई ॥
सिवसनकादिक अरु ब्रह्मादिक, शेष सहस मुख गाई ।
तुलसीदास मारुत-सुत की प्रभु, निज मुख करत बड़ाई ॥

कुछ दोहे

रे मन ? सब सों निरस ह्वै, सरस राम सों होहि ।
भलो सिखावन देत है, निस दिन तुलसी तोहि ॥१॥
तुलसी श्री रघुबीर तजि करै भरोसो और ।
सुख संपति की कहा चली, नरकहु नाहीं ठौर ॥२॥

बरग्रा को गोवर भयो, को चहै को करै प्रीति।
तुलसी तू अनुभव अब, राम विमुख की रीति ॥३॥
तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार।
राम न रोष न दोष दुख, दास भये भव पार ॥४॥
तुलसी रामहु तें अधिक, राम भक्त जिय जान।
ऋनिया राजा राम भे, धनिक भए हनुमान ॥५॥
विनु विश्वास भगति नहिं, देहि विनु द्रवहिं न राम।
रामकृपा विनु सपनेहुँ, जीव न लह विश्राम ॥६॥
अवसर कौड़ी जो चुकै, वहुरि दिए क्या लाख।
दुइज न चन्दा देखिए, ऊदौ कहा भरि पाख ॥७॥
तुलसी अपना अचरन, भलो न लागत कासु।
तेहि न वसात जो खात नित, लहसुनहू को बासु ॥८॥
तुलसी जे कीरति चहहिं, पर की कीरति खोई।
तिनके मुँह मसि लागिहै, मिटहि न मरिहैं धोई ॥६॥
परद्रोही, परदार रत, परधन पर अपवाद।
ते नर पांवर पाप मय, देह धरे मनुजाद ॥१०॥
सारदूल को स्वांग कर, कूकर की करतूति।
तुलसी सापर चाहिए, कीरति विजय विभूति ॥११॥
पेट न फूलत विनु कहे, कहत न लागे ढेर।
सुमति विचारे बोलिये, समुझि कुफेर सुफेर ॥१२॥
सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाय रिपु, कायर करहिं प्रलापु ॥१३॥
तुलसी जो समरथ सुमित, सुकृति, साधु, सयान।
जो विचारि व्यवहरइ जग, खरच लाभ अनुमान ॥१४॥
दीरघ रोगी, दारिदी, कटु बच, लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान तउ, होंहि निरादर जोग ॥१५॥

सत्रु सयानो सलिल ज्यों, राख सीस रिपुनाउ।
बूड़त लखि, पग डगित लखि चपरि चहूँ दिसि धाउ ॥१६॥
सरनाउत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पांवर पापमय, तिनहि विलोकत हानि ॥१७॥
तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर बोलिहैं, हमें पूजिहैं कौन ॥१८॥
तुलसी सन्त सुअम्ब तरु, फूलि फलहिं पर हेत।
इतते ये पाहन हनत, उतते फल वे देत ॥१९॥
किये पीठि पाछे लगै, सनमुख होत पराय।
तुलसी सर्पति छांह ज्यों, लखि दिन वैठ गँवाय ॥२०॥

४

मीरा बाई

श्रीकृष्ण-प्रेम

(१)

म्हाने चाकर राखो जी।
गिरिधारी नागर, चाकर राखो जी ।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ , नित उठ दरसन पासूँ ।
वृन्दावन की कुञ्ज गलिन में, गोविंद लीला गासूँ ॥१॥
चाकरिया में दरसन पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बातां सरसी ॥२॥
मोर मुकुट पीतांबर सोहै, गल बैजंती माला।
वृन्दावन में धेनु चरावै, मोहन मुरली वाला ॥३॥
ऊँचे ऊँचे महल बनाऊँ, बिच-बिच राखूँ बारी।
साँवरिया के दरसन पाऊँ, पहिरि कुसुंभी सारी ॥४॥
जोगी आया जोग करन कूँ, तप करने संन्यासी।
हरी-भजन कूँ साधू आये, वृन्दाबन के बासी ॥५॥
मीरा के प्रभु गहिर गँभीरा, हृदै रहो जी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसन दीनो, जमुना जी के तीरा ॥६॥

(२)

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ॥
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ।
तात मात भ्रात बंधु, आपनो न कोई ॥१॥

छाँड़ि दई कुल की कानि, कहा करै कोई।
संतन ढिग बैठि, बैठि लोक-लाज खोई ॥२॥
चूनरी के किये टूक, ओढ़ि लीन्ही लोई।
मोती मूँगे उतारि, वन-माला पोई ॥३॥
अँसुअन जल सींचि सींचि, प्रेम-बेलि बोई।
अब तो बेलि फैल गई, आनन्द फल होई ॥४॥
प्रेम की मथनियाँ बड़े, जतन से बिलोई।
घृत-घृत सब काढ़ि लियो, छाछ पियो कोई ॥५॥
भगत देखि राजी भई, जगत देखि रोई।
दासी 'मीरा' लाल गिरधर, तारो अब मोही ॥६॥

(३)

मैं तो साँवरे के रंग राची।
साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरु, लोक-लाज तजि नाची ॥१॥
गई कुमति लई साधु की संगति, भगतरूप भई साँची।
गाय-गाय हरि के गुण निसि दिन काल-ब्याल सूँ बाँची ॥२॥
उन बिन सब जग खारो लागत, और बात सब काँची।
मीरा श्री गिरधरन लाल सूँ भगति रसीली जाँची ॥३॥

विरह-वेदना

(१)

हेरी मैं तो प्रेम-दिवाणी, मेरा दरद न जाणै कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोणा होय।
गगन-मँडल पै सेज पिया की, किस विध मिलणा होय ॥१॥
घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय।
जौहरि की गति जौहरि जानै, की जिन जौहर होय ॥२॥
दरद की मारी बन-बन डोलूँ, वैद मिल्या नहिं कोय।
'मीरा' की प्रभु पीर मिटैगी, जब वैद सँवलिया होय ॥३॥

(२)

नातो नाम को मोसूं तनक न तोड्यो जाय

बावल वैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हारी बाँह।
मूरख वैद मरम नहिं जाने, करक कलेजे मांह ॥१॥
जाओ वैद घर आपने रे, म्हारो नाम न लेय।
मैं तो दाधी बिरह की रे, काहे कूँ औषध देय ॥२॥
माँस गलि-गलि छीजिया रे, करक रह्या गल माँहि।
आँगुलिया की मूँदड़ी म्हारे, आवन लागी बाँहि ॥३॥
काटि कलेजो मैं धरूँ रे, कौआ तू ले जाय।
ज्याँ देसाँ म्हारो पिव वसै रे, वे देखत तू खाय ॥४॥
म्हारे नातो नाम को रे, और न नातो कोय।
'मीरा' व्याकुल विरहिनी रे, पिय दरसन दीजो मोय ॥५॥

उपदेशात्मक पद

(१)

राम-नाम-रस पीजै मनुआँ, राम-नाम-रस पीजै।
तजि कुसंग सतसंग बैठि नित, हरि-चरचा सुनि लीजै ॥१॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ, बहा चित्त से दीजै।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रंग में भीजै ॥२॥

(२)

भज ले रे मन गोपाल गुना ॥
अधम तरे अधिकार भजन सूँ, जोई-जोई आये हरि सरना।
अविस्वास तो साखि बताऊँ, अजामील गणिका सदना ॥१॥
जो कृपाल तन मन धन दीन्हो, नैन नासिका मुख रसना।
जाको रचत मास दस लागे, ताहि न सुमिरो एक छिना ॥२॥
बालापन सब खेल [illegible]यो, तरुण भयो जब रूप घना।
वृद्ध भयो जब आलस उपज्यो, माया मोह भयो मगना ॥३॥

गज अरु गीध तरे भजन सूँ, कोउ तर्यो नहिं भजन बिना
धना भगत पीपा मुनि सिवरी, मीरा की हू करौ गणना ॥४॥

भक्ति-माहात्म्य

(१)

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ॥
साँप पिटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दियो जाय ।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय ॥१॥
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय ।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमृत अँचाय ॥२॥
सूल-सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय ।
साँझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय ॥३॥
'मीरा' के प्रभु सदा सहाई, राखे बिघन हटाय ।
भजन-भाव में मस्त डोलती, गिरिधर पै बलि जाय ॥४॥

(२)

मन रे परस हरि के चरन ।
सुभग सीतल कमल-कोमल त्रिविध ज्वाला हरन ।
जे चरन प्रह्लाद परसे, इन्द्र पदवी धरन ॥
जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हों, राखि अपने चरन ।
जिन चरन ब्रह्माण्ड भेट्यो, नखसिखौ श्री भरन ।
जिन चरन प्रभु परसि लीन्हें, तरी गौतम धरन ।
जिन चरन कालीहिं नाथ्यो, गोपलीला करन ।
जिन चरन धार्‌यो गोवर्धन, गरब मघवा हरन ।
दास मीरा लाल गिरधर, अगम तारन तरन ॥

(३)

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल ।
मोहनी मूरत साँवरी सूरत नैना बने बिसाल ।

अधर सुधारस मुरली राजति उर वैजन्ती माल।
छुद्र घंटिका कटि तट शोभित नूपुर शब्द रसाल।
मीरा सन्तन सुखदाई भगत-वछल गोपाल।

(४)

पायो जी मैंने राम-रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुर कर किरपा अपणायो।
जनम जनम की पूँजी पाई जग में सबै खोवायो।
खरचै नहिं कोइ चोर न लेवै दिन-दिन बढ़त सवायौ।
सत की नाव खेवटिया सतगुर भवसागर तरि आयौ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरखि-हरखि जस गायौ।

५

नरोत्तमदास

सुदामा-चरित्र

विप्र सुदामा बसत हो, सदा आपने धाम।
भिच्छा करि भोजन करै, हिये जपै हरिनाम ॥
ताकी घरनी पतिव्रता, गहे वेद की रीति।
सजल सुसील सुबुद्धि अति, पति सेवा सों प्रीति ॥

पत्नी—कोदो सवाँ जुरतो भरि पेट,
न चाहति हौं दधि दूध मठौती।
सीत बितीतत जौ सिसियात,
तो हौं हठती पै तुम्हें न हठौती ॥
जो जनती न हितू हरि सो,
तो मैं काहे को द्वारका पेलि पठौती।
या घर तें न गयो कबहूँ पिय,
टूटो तवा अरु फूटी कठौती ॥

सुदामा—प्रीति में चूक न है उनके,
हरि मो मिलिहैं उठि कंठ लगायकै।
द्वार गये कछु देहैं भलो हमें,
द्वारकानाथ हैं सब लायकै ॥
या विधि बीति गये पन द्वै,
अब तो पहुँचो बिरधापन आयकै।

जीवन केतो है जाके लिये,
हरि सों अब होहुँ कनावड़ो जायकै ॥
सिद्ध करी गनपति सुमिर, बाँधि दुपटिया खूँट।
माँगत खात चले तहाँ; मारग वाली बूट ॥
दीठि चकचौंधि गई देखत सुबर्नमई,
एक तें सरस एक द्वारिका के भौन हैं।
पूछे विन कोऊ कहूँ का काहू सों न करै बात,
देवता-से बैठे सब साधि-साधि मौन हैं ॥
देखत सुदामै धाय पौरजन गहे पाय,
"कृपा करि कहौ विप्र कहाँ कीन्हों गौन हैं।"
"धीरज अधीर के, हरन पर-पीर के,
बताओ बलवीर के महल यहाँ कौन हैं।"
सीस पगा न भगा तन में, प्रभु ! जाने को आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी-सी लटी दुपटी, अरु पाँय उपानह की नहिं सामा ॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देखि, रहो चकि-सो वसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा ॥
बोल्यो द्वारपालक 'सुदामा नाम पांडे' सुनि,
छाँड़े राज-काज ऐसे जी की गति जानै को ?
द्वारिका के नाथ हाथ जोरि धाय गहे पाँय,
भेटे लपटाय करि ऐसे दुख सानै को ?
नैन दोऊ जल भरि पूँछत कुशल हरि,
विप्र बोल्यो "विपदा में मोहि पहिचानै को ?
जैसी तुम कीन्हीं तैसी करै को कृपा के सिन्धु,
ऐसी प्रीति दीनबन्धु ! दीनन सों मानै को ?"
ऐसे बेहाल बिवाइन सों पग, कंटक-जाल लगे पुनि जोये।
"हाय ! महादुख पायो सखा ! तुम आये इतै न कितै दिन खोये ॥

देखि सुदामा की दीन दसा, करुना करिकै करुनानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो, नहिं नैनन के जल सों पग धोये ॥"
काँपि उठी कमला मन सोचत, मोसों कहा हरि को मन औंको ?
ऋद्धि कँपी सब सिद्धि कँपी, नव निद्धि कँपीं बम्हना यह धौं को ॥
सोच भयो सुरनायक के जब दूसरी बार लियो भरि झौंको।
मेरु डर्‍यो "बकसैं जनि मोहिं" कुवेर चवावत चाउर चौंको।
भौन भरे पकवान मिठाइन, लोग कहैं निधि हैं सुषमा के।
साँझ सबेरे चितै अभिलाषत, दाख न चाखत सिन्धु रमा के ॥
बाँभन एक कोऊ दुखिया सेर-पावक चाउर लायो समा के।
प्रीति की रीति कहा कहिए, तेहि वैठि चवात हैं कन्त रमा के ॥
हाथ गह्यो प्रभु को कमला कहै नाथ कहा तुमने चित धारी।
तंदुल खाय मुठी दुइ, दीन कियो तुमने दुई लोक बिहारी ॥
खाइ मुठी तिसरी अब नाथ ! कहाँ निज बास की आस बिचारी।
रंकहि आप समान कियो तुम, चाहत आपहि होन भिखारी ॥
धन्य कहा कहिए द्विज जू तुम सों जग कौन उदार प्रवीनो।
पाछिली प्रीति निबाही भली बिधि, दोष निवारि कै रोष न कीनो ॥
हौं द्विज के चरनोदक हेतु, अजन्म कहाउ कै जन्म सु लीनो।
आवन कै निज पावन सों यहाँ मों सो अपावन पावन कीनो ॥
वैसई राय-समाज वेई, गज बाजि घने मन संभ्रम छायो।
"कैधों पर्‍यो कहुँ मारग भूलि कै, कै अब फेरि हौं द्वारिकै आयो ॥"
भौन बिलोकिबे को मग लोचन सोंचत ही सब गाँव मझायो।
पूछि भे पांडे कथा सब सों फिरि झोपरि को कहुँ सोधि न पायो ॥

टूटी-सी मड़ैया मेरी परी हुती याही ठौर,
तामें परो दुःख-काँटो कहाँ हेय-धाम री।
जेवर जराऊ तुम साजे प्रति अङ्ग अङ्ग,
सखी सोहैं संग वह छूछी हुती छाम री ॥

तुम तौ पटंबर री ओढ़े हौ किनारीदारी,
सारी जरतारी वह ओढ़े कारी कामरी।
मेरी वा पँड़ाइन तिहारी अनुसार ही पै,
बिपदा-सताई वह पाई कहाँ पामरी॥
कै वह टूटी-सी छानी हुती, कहँ कञ्चन के सब धाम सुहावत।
कै पग में पनही न हुती, कहँ लै गजराजहु ठाढ़े महावत॥
भूमि कठोर पै रात कटै, कहँ कोमल सेज पै नींद न आवत।
कै जुरतो नहीं कोदो सवाँ, प्रभु के परताप तें दाख न भावत॥

६

रहीम

दोहे

जिहि 'रहीम' चित आपनो, कीन्हों चतुर चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहै, कृष्ण चन्द्र की ओर ॥१॥
समय दसा कुल देखि कै लोग करत सनमान।
'रहिमन' दीन अनाथ को तुम बिनु को भगवान ॥२॥
जे गरीब पर हित करैं, ते 'रहीम' बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ॥३॥
दिव्य दीनता के रसहिं, का जानै जग अंधु।
भली बिचारी दीनता, दीन बंधु से बंधु ॥४॥
माँगे घटत 'रहीम' पद, कितो करो बड़ि काम।
तीन पैग बसुधा करी, तऊ बावनै नाम ॥५॥
रीति प्रीति सबसों भली, बैर न हित मित गोत।
'रहिमन' याही जनम के, बहुरि न संगति होत ॥६॥
दुरदिन परे 'रहीम' कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं बित हानि को जो न होय हित हानि ॥७॥
धनि 'रहीम' गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अंत बसि, कहा भौंर कर भाय ॥८॥
'रहिमन' राज सराहिये, ससि सम सुखद जो होइ।
कहा बापुरो भानु है, तप्यो तरैयनि खोइ ॥९॥

ज्यों 'रहीम' गति दीप की कुल कपूत गति सोइ।
बारे उजियारो लगै, बढ़ै अँधेरो होइ ॥१०॥
धनि 'रहीम' जल पंक कहँ, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि भड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ॥११॥
जाल परे जल जात वहि, तजि मीनन को मोह।
'रहिमन' मछरी नीर को, तऊ न छाँड़ति छोह ॥१२॥
कदली सीप भुजङ्ग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई गुन दीन ॥१३॥
मान सहित विष खाइ के, संभु भये जगदीस।
बिन आदर अमृत भख्या, राहु कटायौ सीस ॥१४॥
'रहिमन' धागा प्रेम को, मत तोरेउ चटकाइ।
टूटे से फिर ना मिले, मिलै गाँठि परि जाइ ॥१५॥
'रहिमन' वित्त अधर्म को, जात न लागे बार।
चोरी करि होरी रची, भई छिनक में छार ॥१६॥
'रहिमन' ओछे नरन ते, तजौ बैर औ प्रीति।
काटे चाटे स्वान के, दुहूँ भाँति विपरीति ॥१७॥
'रहिमन' बहु भेषज करत, व्याधि न छाँड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ ॥१८॥
बसि कुसंग चाहत कुसल, यह 'रहीम' अपसोस।
महिमा घटी समुद्र कै, रावन बसा परोस ॥१९॥
'रहिमन' यह तनु सूप है, लीजै जगत पछोरि।
हलुकन को उड़ि जान दै, गरुवे राखि बटोरि ॥२०॥
'रहिमन' पानी राखिये, बिनु पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे मोती मानुस चून ॥२१॥
'रहिमन' कठिन चिताहु ते, चिन्ता कर चित चेत।
चिता दहति निर्जीव कहँ, चिन्ता जीव समेत ॥२२॥

संतत सम्पति जान के, सबको सब कछु देय।
दीनबन्धु बिनु दीन की, को 'रहीम' सुधि लेय ॥२३॥
'रहिमन' निज मन की व्यथा, मन ही राखौ गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय ॥२४॥

अन्योक्ति

सुनिये बिटप प्रभु पुहुप तिहारे हम,
राखिये हमें तो सोभा रावरी बढ़ाइहैं।
तजिहौ हरष तो बिरष है न चारो कछु,
जहाँ-जहाँ जैहैं तहाँ दूनी छवि पाइहैं ॥
सुरन चढ़ेंगे सुर नरस चढ़ेंगे हम,
सुकवि 'रहीम' हाथ-हाथ ही बिकाइहैं।
देश में रहेंगे परदेश में रहेंगे,
काहू भेष में रहेंगे पर रावरे कहाइहैं ॥

७

रसखान

मंगलाचरण

मोहन-छवि रसखानि लखि, अब दृग अपने नाहिं।
ऐंचे आवत धनुष से, छूटे सर से जाहिं॥
बंक विलोकनि हँसनि मुरि, मधुर बैन रससानी।
मिले रसिक रसराज दोउ, हरखि हिए रसखानि॥
या छवि पै रसखानि अब, वारौं कोटि मनोज।
जाकी उपमा कविन नहिं, पाई रहे सु खोज॥
मोहन सुंदर स्याम को, देख्यौ रूप अपार।
हिय जिय नैननि में बस्यौ, वह व्रजराज-कुमार॥

दोहे

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोय॥१॥
प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरिस बखान।
जो आवत एहि ढिग बहुरि, जात नाहिं रसखान॥२॥
प्रेम-वारुनी छानिकै, वरुन भए जलधीस।
प्रेमहिं तें विष पान करि, पूजे जात गिरीस॥३॥
कमलतंतु सों छीन अरु, कठिन खड़ग की धार।
अति सूधो टेढ़ो बहुरि, प्रेमपंथ अनिवार॥४॥

भले वृथा करि पचि मरौ, ज्ञान-गरूर बढ़ाय।
बिना प्रेम फीकौ सबै, कोटिन किए उपाय ॥५॥
श्रुति, पुरान, आगम स्मृतिहि, प्रेम सबहिं को सार।
प्रेम बिना नहिं उपजि हिय, प्रेम-बीज अंकुवार ॥६॥
ज्ञान, कर्म रु उपासना, सब अहमिति को मूय।
दृढ़ निश्चय नहिं होत बिन, किए प्रेम अनुकूल ॥७॥
शास्त्रन पढ़ि पंडित भए, कै मौलवी कुरान।
जुपै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो रसखान ॥८॥
काम, क्रोध, मद, मोह, भय, लोभ द्रोह, मात्सर्य।
इन सबही तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य ॥९॥
बिनु गुन जोबन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामना ते रहित, प्रेम सकल रस खानि ॥१०॥
प्रेम प्रेम सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस।
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसाँस ॥११॥
प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेमसरूप।
एक होइ द्वै यों लसैं, ज्यों सूरज अरु धूप ॥१२॥
ज्ञान, ध्यान, बिचार, मती, अरु विश्वास, विवेक।
बिना प्रेम सब धूर हैं, अग जग एक अनेक ॥१३॥
जेहि पाए बैकुंठ अरु, हरिहूँ की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक, सुद्ध, सुभ, सरस, सुप्रेम कहाहि ॥१४॥
कोउ याहि फांसी कहत, कोउ कहत तरवार।
नेजा, भाला, तीर, कोउ—कहत अनोखी ढार ॥१५॥
हरि के सब आधीन, पै, हरी प्रेम आधीन।
याही तें हरि आपुही, याही बड़प्पन दीन ॥१६॥

फुटकर

मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्‌यो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि कालिंदी-कूल कदंब की डारन॥१॥

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधि को सुख नंद की गाइ चराइ बिसारौं।
रसखानि कबौं इन आँखिन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन कहू कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥२॥

धूर भरे अति शोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अंगना पग पैजनी बाजनी पीरी कछोटी॥
वा छवि को रसखानि विलोकत वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सौं लै गयो माखन रोटी॥३॥

दूध दुह्यो सीरो पर्‌यो तातो न जमायो कर्‌यो,
जामन दयो सो धर्‌यो धर्‌योई खटाइगो।
आन हाथ आन पाइ सबही के तबही तें,
जबही तें रसखानि तामन सुनाइगो॥
ज्योंही नर त्योंही नारी तैसी ये तरुन बारी,
कहिए कहा री सब ब्रज बिललाइगो।
जानिए न आली यह छोहरा जसोमति को,
बाँसुरी बजाइगो कि विष बगराइगो॥४॥

गोरज बिराजै भाल लहलही बनमाल,
आगे गैया पाछे ग्वाल गावै मृदु तान री।
तैसी धुनी बाँसुरी की मधुर मधुर तैसी,
बंक चितवनि मंद मंद मुसिकानि री॥
कदम बिटप के निकट तटनि के आये,
अटा चढ़ि चाहि पीत पट फहरानी री।

रस बरसावै तन तपन बुझावै नैन,
प्रानन रिझावै वह आवै रसखानि री ॥५॥
ग्वालन संग जैबो बन ऐबो सु गाइन संग,
हेरि तान नैबो हाहा नैन फरकत हैं।
ह्यों के गज मोती मल वारों गुंजमालिन पै,
कुंज सुधि आए हाय प्रान धरकत हैं॥
गोबर को गारो सुतौ मोहि लगै प्यारौ,
कहा भयो महल सोने को जटत मरकत हैं॥
मंदिर ते ऊँचे यह मंदिर हैं द्वारिका के,
ब्रज के खिरक मेरे हिय खरकत हैं॥६॥
कहा रसखानि सुखसंपति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाए अंग छार को।
कहा साधे पंचानल कहा सोए बीच नल,
• कहा जीत लाए राज सिंधु आर पार को॥
जप बार बार तप संजम बयार ब्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हों नहीं प्यार नहीं सेयो दरबार चित,
चाह्यो न निहारो जो पै नन्द के कुमार को॥७॥
कंचन के मन्दिरनि दीठि ठहरात नाहिं,
सदा दीपमाल लाल मानिक उजारे सों।
और प्रभुताई अब कहाँ लौं बखानौं प्रति,
हारन की भीर भूप टरत न द्वारे सों॥
गंगाजी में न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाइ वेद,
बीस बार गाइ ध्यान कीजत सवार सों।
ऐसे ही भए तो नर कहा रसखानि जो पै,
चित दै न कीनी प्रीत पीतपटवारे सों॥८॥

द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सों कियो न निहारो।
गौतम गेहिनी कैसी तरी प्रहलाद को कैसे हर्‌यो दुखभारो॥
काहे को सोच करै रसखानि कहा करिहै रविनन्द विचारो।
ताखन जा खन राखिये माखन चाखनहारो सो राखनहारो॥६॥

८

विहारीलाल

भक्ति

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झांई परैं, स्याम हरित-दुति होइ ॥१॥
कीनै हूँ कोटिक जतन, अब कहि काढ़ै कौनु।
भो मन मोहन रूप मिलि, पानी में को लौनु ॥२॥
जगत जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाहिं।
ज्यौं आंखिन सबु देखियै, आँखि न देखी जाहिं ॥३॥
बंधु भए का दीन के, को तार्‌यौ रघुराइ।
तूठे तूठे फिरत हौ, झूठे बिरद कहाइ ॥४॥
या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम रंग, त्यौं त्यौं उज्जल होय ॥५॥
कीजै चित सोई तरौं जिहिं पतितन के साथ।
मेरे गुन औगुन-गनन, गनौ न गोपीनाथ ॥६॥
मैं तपाइ त्रय ताप सौं, राख्यौ हियौ हमाम।
मति कबहुँक आएं यहां, पुलकि पसीजैं स्याम ॥७॥
सखि सोहत गोपाल कैं उर गुंजन की माल।
बाहिर लसति मनौ पिए दावानल की ज्वाल ॥८॥
तौ लग या मन-सदन में हरि आवैं किहिं बाट?
बिकट जटे जौ लगु निपट खुलें न कपट-कपाट ॥९॥

भजन कह्यौ तातैं भज्यौ, भज्यौ न एकौ वार।
दूरि भजन जातैं कह्यौ, सो तैं भज्यौ गंवार ॥१०॥

नीति

तन्त्री नाद कवित्त-रस सरस राग रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अङ्ग ॥१॥
कैसैं छोटे नरन तैं, सरत बड़न के काम।
मढ्यौ दमामौ जात क्यौं, कहि चूहे के चाम ॥२॥
बड़े न हूजे गुनन बिन, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनौ गढ्यौ न जाय ॥३॥
कनक कनक तै सौ गुनी मादकता अधिकाइ।
उहिं खाए बौराइ नर, इहिं पाए बौराइ ॥४॥
नर की अरु नलनीर की, गति एकै करि जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ ॥५॥
गुनी गुनी सब कैं कहैं, निगुनी गुनी न होत।
सुन्यौ कहूँ, तरु अरक तैं अरक समान उदोत ॥६॥
बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमान।
भलौ भलौ कहि छोड़िये, खोटैं ग्रह जप दान ॥७॥
बुरौ बुराई जो तजै, तौ चितु खरौ डरातु।
ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि, गनैं लोग उत्पातु ॥८॥

अन्योक्ति

नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल।
अली कली ही सौं बंध्यौ, आगे कौन हवाल ॥१॥
स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज पराए पानि परि, तू पच्छीनु न मारि ॥२॥

दिन दस आदर पाइ कै, करि लै आप बखान।
जौ लगि काग ! सराध पखु, तौ लगि तो सनमान ॥३॥
मरत प्यास पिंजरा पर्‌यौ, सुआ समै के फेर।
आदर दै दै बोलियत बाइस बलि की बेर ॥४॥
इहीं आस अटक्यौ रहत, अलि गुलाब के मूल।
ह्वै हैं फेरि बसंत ऋतु, इन डारन के फूल ॥५॥
वे न इहां नागर बड़े, जिन आदर तो आब।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ, गंवई-गाँव गुलाब ॥६॥
चल्यौ जाइ ह्याँ को करै, हाथिन के व्यापार।
नहिं जानत इहिं पुर बसैं, धोबी ओड़ कुंभार ॥७॥
नहिं पावस ऋतुराज ! यह तजि तरवर ! चित भूल।
अपतु भए बिनु पाइहै, क्यौं नवदल फल फूल ॥८॥
कर लै, सूंघि, सराहि हूँ, रहे सबै गहि मौन।
गंधी अंध गुलाब कौ, गवईं गाहक कौन ॥९॥
को छूट्यौ इहिं जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत, त्यौं त्यौं उरझत जात ॥१०॥
गोधन तू हरष्यौ हियैं, घरियक लेहि पुजाइ।
समुझि परैगी सीस पर, परत पसुन के पाइ ॥११॥

सौन्दर्य

तो पर वारौं उरबसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन कैं उरबसी, ह्वै उरबसी समान ॥१॥
केसरि केसरि क्यौं सकै, चंपक कितक अनूपु।
गात-रूप लखि जात दुरि, जातरूप कौ रूप ॥२॥
भूषण-भारु संभारिहैं, क्यौं इहि तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परैं, सोभा ही के भार ॥३॥

लिखन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर ।
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ॥४॥
कंचन तन धन बरन वर, रह्यौ रंग मिलि रंग ।
जानी जाति सुबास ही केसरि लाई अंग ॥५॥

प्रकृति

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर, मृग बाघ ।
जगत तपोवन सो कियो, दीरघ-दाघ-निदाघ ॥१॥
बैठि रही अति सघन वन, पैठि सदन तन माँह ।
निरखि दुपहरी जेठ की, छाहौं चाहति छाँह ॥२॥
ज्यों ज्यों बढ़ति बिभावरी, त्यों त्यों बढ़त अनन्त ।
ओक ओक सब लोक सुख, कोक सोक हेमन्त ॥३॥
आवत जात न जानिए, तेजहिं तजि सियरान ।
घरहिं जमाई लौं घट्यौ खरो पूस दिन मान ॥४॥
घन घेरो छुटिगो, हरषि चली चहुँ दिसि राह ।
कियो सुचैनो आय जग, सरद सूर नरनाह ॥५॥
पावस निसि अँधियार मैं, रह्यो भेद नहिं आन ।
राति द्यौस जान्यो परत, लखि चकई चकवान ॥६॥

६

भूषण

शिवाजी का पराक्रम

(१)

वारिधि के कुम्भ-भव, घन-वन-दावानल,
तिमिर पै तरनि की किरन समाज हौ।
कंस के कन्हैया, कामदेव हू के कंठ-नील,
कैटभ के कालिका, विहंगन के बाज हौ॥
भूषन भनत सवै असुर के इन्द्र पुनि,
पन्नग के कुल के प्रबल पच्छिराज हौ।
रावन के राम, कार्तवीज के परसुराम,
दिल्लीपति-दिग्गज के सिंह सिवराज हौ॥

(२)

प्रेतिनी-पिसाचरु निसाचर-निसाचरिहू,
मिलि-मिलि आपुस में गावत बधाई हैं।
भैरों भूत-प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ-जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई है॥
किलकि-किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम-डिम डमरू दिगम्बर बजाई है।
सिवा पूछैं सिव सों समाज आज कहां चली,
काहू पै सिवा नरेस भृकुटी चढ़ाई है॥

(३)

लोमस की ऐसी आयु होय कौनहू उपाय,
तापर कवच जो करनवारो धरिए ।
ताहू पर हूजिए सहसबाहु, ता पर
सहस-गुनो साहस जो भीमहु ते करिए ॥
भूषन कहैं यों अवरंग जु सों उमराव,
नाहक कहौ तौ जाय दच्छिन में मरिए ।
चलै न कछू इलाज भेजियत वेही काज,
ऐसो होय साज तौ सिवा सों जाय लरिए ॥

(४)

आपस की फूट ही तें सारे हिन्दुवान टूटे,
टूट्यो कुल रावन अनीति अति करतें ।
पैठियो पताल बलि, बज्रधर ईरषा तें ॥
टूट्यो हिरनाच्छ अभिमान चित धरतें ॥
टूट्यो सिसुपाल बासुदेव जू सों बैर करि,
टूट्यो है महिष दैत्य अधम बिचरतें ।
राम-कर छूवन तें टूट्यो ज्यों महेश चाप,
टूटी पातसाही सिवराज संग लरतें ।

(५)

साहि के सपूत रनसिंह सिवराज वीर,
बाही समसेर सिर सत्रुन पै कढ़िकै ।
काटे वै कटक कटकिन के विकट भू पै,
हम सों न जात कह्यो सेप सम पढ़िकै ॥
पारावार ताहि को न पावत है पार कोऊ,
सोनित-समुद्र यहि भाँति रह्यो बढ़िकै ।
नाँदिया की पूँछ गहि पैरिकै कपाली बचे,
काली बची मास के पहार पर चढ़िकै ॥

(६)

महाराज सरजा सुमनसिंह तेरी धाक,
छूटै अरि-नैनन मैं पानी की पनारिका।
भूषन भनत धार-धार सुनि बेसुमार,
बारक सम्हारैं न कुमार न कुमारिका॥
देह की न खबर सुगेह की चलावै कौन,
गात न सोहात न सोहाती परिचारिका।
मानव की कहा चली एते मान आगरे मैं,
आयो-आयो सिवराज रटैं सुक-सारिका॥

(७)

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं।
कंद-मूल भोग करैं, कन्द-मूल भोग करैं,
तीन बेर खातीं ते वे तीन बेर खाती हैं॥
भूषन शिथिल अंग, भूषन शिथिल अंग,
बिजन डुलातीं ते वे बिजन डुलाती हैं।
'भूषन' भनत शिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वे नगन जड़ाती हैं॥

शिवाजी की नीति

अति मतवारे जहाँ दुरदै निहारियतु,
तुरगन ही मैं चंचलाई परकीति है।
'भूषन' भनत जहाँ पर लागैं बानन मैं,
कोक पच्छिन माहिं बिछुरन-रीति है॥
गुनि-गन चोर जहाँ एक चित्त ही के,
लोक बँधै जहाँ एक सरजा की गुन-प्रीति है।

कम्प कदली मैं वारि-वुन्द बदली मैं,
सिवराज अदली के राज मैं यों राजनीति है ॥

हिन्दुत्व-रक्षा

(१)

वेद राखे विदित, पुरान परसिद्ध राखे,
राम-नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो, माला राखी गर मैं ॥
मीड़ि राखे मुगल, मरोड़ि राखे पातसाह,
वैरी पीसि राखे, बरदान राख्यो कर मैं।
राजन की हद्द राखी, तेग-बल शिवराज,
देव राखे देवल, स्वधर्म राख्यो घर मैं ॥

(२)

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति-पुरान राखे वेद-विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यो, राख्यो गुन गुनी मैं ॥
'भूषन' सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,
देस-देस कीरति बखानी तव सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली-दल दाबिके दिवाल राखी दुनी मैं ॥

यश-श्वेतिमा

इन्द्र निज हेरत फिरत गज-इन्द्र अरु,
इन्द्र को अनुज हेरै दुग्ध-नदीस को।

'भूषन' भनत सुर-सरिता को हंस हेरै,
विधि हेरै हंस को चकोर रजनीस को ॥
साहि तनै सरजा यों करनी करी है तैंने,
होत है अचंभो देव कोटियो तैंतीस को।
पावत न हेरे तेरे जस मैं हिराने, निज,
गिरि को गिरीस हेरैं, गिरिजा गिरीस को ॥

छत्रसाल की दानशीलता

राजत अखंड तेज, छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयन्द दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुजन करत बहु ख्याल को ॥
साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीन्हे,
'भूषन' भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को।
आन राव राजा एक मन मैं न लाऊँ अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को ॥

१०

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारत-दुर्दशा

रोअहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हा हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥
सब के पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सब के पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो॥
सब के पहिले जो रूप रंग रस भीनो।
सब के पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो॥
अब सब के पीछे सोई परत लखाई।
हा हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥
जहँ राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती।
जहँ भए शाक्य हरिचंद्रक नहुष ययाती॥
जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती॥
अब जहँ देखहु तहँ दुःखहि दुःख दिखाई।
हा हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥
लरि वैदिक जैन डुबोई पुस्तक सारी।
करि कलह बुलाई जवनसैन पुनि भारी॥
तिन नासी बुधि बल विद्या धन बहु बारी।
छाई अब आलस कुमति कलह अँधियारी॥
भए अंध पंगु सब दीन हीन बिलखाई।
हा हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥

अँगरेज़ राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी॥
ताहू पै महंगी काल रोग विस्तारी।
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री॥
सबके ऊपर टिक्कस की आफ़त आई।
हा हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥

आह्वान

चलहु वीर उठि तुरत सबै जय-ध्वजहिं उड़ाओ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींच रनरंग जमाओ॥
परिकर कसि कटि उठो धनुष पै धरि सर साधौ।
केसरिया बानो सजि सजि रन कंकन बाँधो॥
जो आरजगन एक होई निज रूप सम्हारैं।
तजि गृहकलहहिं अपनी कुल मरजाद विचारैं॥
तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी।
सिंह जगे कहुँ स्वान ठहरि हैं समर मंझारी॥
उठहु वीर तरवार खींच मारहु घन समर।
लोह-लेखनी लिखहु आर्य बल जवनहृदय पर॥
मारू बाजे बजैं कहीं धौंसा घहराहीं।
उड़हि पताका सत्रु हृदय लखि-लखि थहराहीं॥
चारन बोलहिं आर्य-सुजस बंदी गुन गावैं।
छुटहिं तोप घनघोर सबै बंदूक चलावैं॥
चमकहिं असि भाले दमकहिं ठनकहिं तन बखतर।
हींसहिं हय झनकहिं रथ गज चिक्करहिं समर थर॥
छन महँ नासहिं आर्य नीच जवनन कहँ करि छय।
कहहु सबै भारत जय भारत जय भारत जय॥

यमुना-वर्णन

तरनि-तनूजा तट तमाल-तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल-परसन-हित मनहुँ सुहाए॥
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतप-वारन तीर को सिमिटि सबै छाए रहत।
कै हरि-सेवा-हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत॥
कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज-सोभा।
कै उमंगे प्रिय-प्रिया-प्रेम के अनगिन गोभा॥
कै करिकै कर बहु पीय को टेरत निज ढिंग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई॥
कै पिय-पद-उपमान जानि यहि निज उर धारत।
कै मुख करि बहु भृंगन मिसि अस्तुति उच्चारत॥
कै ब्रज हरि-पद-परस हेत कमला बहु आई।
कै ब्रज-तियगन-वदन-कमल की झलकत झाईं॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोऊ ब्रज-मंडल बगरे फिरत।
कै जानि लच्छमी-भौन एहि करि सतधा निज जल धरत॥
परत चंद प्रतिबिंब कहूँ जल मधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो॥
मनु हरि-दरसन हेत चंद जल बसत सुहायो।
कै तरंग-कर मुकुर लिए सोभित छबि छायो॥
कै रास-रमन मैं हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है।
कै जल-उर हरि-मूरति बसति ता प्रतिबिंब लखात है॥
कबहुँ होत सतचंद, कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत।
पवन-गवन-वस बिंब रूप जल मैं बहु साजत॥

मनु ससि भरि अनुराग जमुन-जल लोटत डोलै।
कै तरंग की डोर हिंडोरन करति कलोलै॥
कै बाल-गुड़ी नभ मैं उड़ी सोहत इत-उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती॥
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन-जल।
कै तारागन गगन लुकत प्रगटत ससि अविकल॥
कै कालिंदी नीर-तरंग जिते उपजावत।
तितने ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत॥
कै बहुत रजत चकई चलत, कै फुहार-जल च्छुरत।
कै निसिपति मल्ल अनेक विधि उठि बैठत कसरत करत॥
कूजत कहुँ कलहंस, कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ कारंडव उड़त, कहुँ जल-कुक्कुट धावत॥
चक्रवाक कहुँ बसत, कहुँ बक ध्यान लगावत।
सुक, पिक जल कहुँ पियत, कहूँ भ्रमरावलि गावत॥
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु, रार विविध पंछी करत।
जलपान, नहान करि सुख-भरे तट-सोभा सब जिय धरत॥

पद

(१)

जगत मैं घर की फूट बुरी।
घर के फूटहिं सों बिनसाई सुवरन लंक पुरी॥
फूटहि सों सब कौरव नासे भारत युद्ध भयो।
जाको घाटो या भारत मैं अबलौं नाहिं पुज्यो॥
फूटहि सों नवनन्द बिनासे गयो मगध को राज।
चन्द्रगुप्त को नासन चाह्यो आपु नसे सह साज॥

जो जग में धन मान और बल आपुनो राखन होय।
तो अपुने घर में भूलेहू फूट करो मति कोय॥

(२)

खंडन जग में काको कीजै।
सब मत तो अपने ही हैं इनको कहा उत्तर दीजै॥
तासों बाहर होई कोऊ जब तब कछु भेद बतावै।
ह्याँ तो वही सबै मत ताके तहँ दूजो क्यों आवै॥
अपुनो ही पै क्रोध बावरे अपुनो काटैं अंग।
'हरीचन्द' ऐसे मतवारेन को कहा कीजै संग॥

(३)

जागो जागो रे भाई।
सोअत निसि बैस गँवाई। जागो जागो रे भाई।
निसि की कौन कहै दिन बीत्यो काल राति चलि आई॥
देखि परत नहिं हित अनहित कछु परे बैरि बस आई।
निज उद्धार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई॥
अबहूँ चेति पकरि राखो किन जो कछु बची बड़ाई।
फिर पछिताये कछु नहिं ह्वै है रहि जैहो मुँह बाई॥

११

श्रीधर पाठक

सु-सन्देश

कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला सुमञ्जु वीणा बजा रही है।
सुरों के संगीत की-सी कैसी सुरीली गुंजार आ रही है॥
हरेक स्वर में नवीनता है, हरेक पद में प्रवीनता है।
निराली लय है और लीनता है, आलाप अद्भुत मिला रही है॥
अलक्ष्य पर्दों से गत सुनाती तरल तरानों से मन लुभाती।
अनूठे अटपट स्वरों में स्वर्गिक सुधा की धारा बहा रही है॥
कोई पुरन्दर की किरकिरी है कि या किसी सुर की सुन्दरी है।
वियोगतप्ता-सी भोगमुक्ता हृदय के उद्गार गा रही है॥
कभी नई तान प्रेममय है, कभी प्रकोपन कभी विनय है।
दया है दाक्षिण्य का उदय है अनेकों बानक बना रही है।
भरे गगन में हैं जितने तारे हुए हैं मदमस्त गत पै सारे।
समस्त ब्रह्माण्ड-भर को मानो दो उँगलियों पर नचा रही है॥
सुनो तो सुनने की शक्तिवालो सको तो जाकर के कुछ पता लो।
है कौन जोगन ये जो गगन में कि इतनी चुलबुल मचा रही है।

देश-गीत

जय-जय प्यारा भारत देश,
जय-जय प्यारा जग से न्यारा,

शोभित सारा, देश हमारा,
जगत-मुकुट, जगदीश दुलारा,
जय सौभाग्य सुदेश।
जय-जय प्यारा भारत देश।

प्यारा देश, जय देशेष,
अजय अशेष, सदय विशेष,
जहाँ न संभव अघ का लेश,
संभव केवल पुण्य-प्रवेश।
जय-जय प्यारा भारत देश।

स्वर्गिक शीश-फूल पृथिवी का,
प्रेम-मूल, प्रिय लोक-त्रयी का,
सुललित प्रकृति-नटी का टीका,
ज्यों निशि का राकेश।
जय-जय प्यारा भारत देश।

जय-जय शुभ्र हिमाचल-शृङ्ग,
कलरव-निरत कलोलिनी गंगा;
भानु - प्रताप - चमत्कृत अंगा,
तेज - पुंज तप - वेश।
जय-जय प्यारा भारत देश।

जग में कोटि कोटि जुग जीवै,
जीवन सुलभ अमी-रस पीवै,
सुखद वितान सुकृत का सीवै,
रहे स्वतन्त्र हमेश।
जय-जय प्यारा भारत देश।

कास्मीर-सुषमा

धनि धनि श्री कश्मीर-वरनि, मन-हरनि सुहावनि ।
धनि कश्यप-जस-धुजा, विश्व मोहिनि मन भावनि ॥
धन्य पुरातन प्रथित धाम, अभिराम अतुल छवि ।
स्वर्ग सहोदरि धरनि, बरनि हारे कोविद कवि ॥
धन्य यहाँ की धूलि, धन्य नीरद, नभ, तारे ।
धन्य धवल हिमशृङ्ग, तुंग, दुर्गम, दृग-प्यारे ॥
धन्य नदी नद स्रोत, विमल गंगोद-गोत जल ।
सीतल सुखद समीर, वितस्ता-तीर स्वच्छ-थल ॥
धनि उपवन उद्यान, सुमन-सुरभित वनवीथी ।
खिलि रहीं चित्र विचित्र, प्रकृति के हाथनु चीती ॥
धन्य सुथर गिरिचरन सरित-निर्झर-रव - पूरित ।
लघु दीरध तरु विहग बोल, कोकिल कल कूजित ॥
मृदुल दूब-दल रचित कुसुम-भूषित सुचि शाद्वल ।
ललित-लतावलि-वलित, कलित, कमनीय, सलिल-थल ॥
धनि सुखमा-सुख-मूल, सरित-सर-कूल मनोहर ।
धनि सागर-सम-तूल, विमल विस्तृत 'इल वूलर' ॥
मानसरोवर - मान - हरन - सुन्दर, 'मानस बल' ।
धनि 'गंधरबल', 'गगरीबल', श्रीनगर स्वच्छ 'डल' ॥
एक एक सों सुथर अनेक, सरोवर छाये ।
प्रकृति देवि निज-रूप-लखन, मनु मुकुर लगाये ॥
धन्य नगर श्रीनगर वितस्ता-कूलनि सोहै ।
पुलिन-भौन प्रतिबिम्ब सलिल-सोभा मन मोहै ॥
लसत 'कदल' पुल सप्त, चपल नौकागन डोलैं ।
रूप रासि नर नारि वारि विच करत कलोलैं ॥
'शेरगढ़ी' नृपभौन सरित तट सोहत सुन्दर ।
विज्जु-दीप-दुति निरखि स्वर्गपुरि दुरत पुरन्दर ॥

गिरि ऊपर सों लगत नगर-छवि निपट निराली।
वर्गाकृति घर वगर विछे वहु सोभा - साली॥
सोहत सो चहुँ ओर, सुघर घर - अवलि एक सी।
वीच वितस्ता-धार सजत सुचि रजत-रेख सी॥
प्रकृति यहाँ एकान्त वैठि निज रूप सँवारति।
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति॥
विमल-अम्वु-सर मुकुरन महँ मुख-विम्व निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आपही तन मन वारति॥
सजति, सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी।
वहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी॥
विहरति त्रिविध-विलास-भरी जोवन के मद सनि।
ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति, थिरकति, वनि ठनि॥
मधुर मञ्जु छवि पुञ्ज छटा छिरकति वन कुञ्जन।
चितवति, रिझवति, हँसति, डसति, मुसकाति, हरति मन॥
यहँ सुरूप सिंगार रूप धरि धरि वहु भाँतिन।
सर, सरिता, गिरि - सिखर, गगन, गह्वर, तरुवर, तृन॥
पूरन करिवे काज कामना अपने मन की।
किंकरता करि रह्यौ प्रकृति-पङ्कज-चरनन की॥
चहुँ दिसि हिम गिरि-सिखर हीर-मनि-मौलि-अवलि मनु।
स्रवत सरित-सित-धार, द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु॥
फल फूलन छवि छटा छई जो वन उपवन की।
उदित भई मनु अवनि-उदर सों, निधि रतनन की॥
हिम श्रेनिन सों घिर्‌यौ अद्रि मण्डल यह रूरौ।
सोहत द्रोनाकार सृष्टि - सुखमा - सुख - पूरौ॥
वहु विधि दृश्य अदृश्य कला कौशल सों छायौ।
रतन निधि नैसर्ग मनहु विधि दुर्ग बनायौ॥

सुरपुर अरु कश्मीर दोउन में को है, सुन्दर?
को सोभा कौ भौन रूप कौ कौन समुन्दर?
काकौं उपमा उचित दैन दोउन में काकी?
याकौं सुरपुर की अथवा सुरपुर कौ याकी?
याकौं उपमा याही की मोहि देत सुहावै।
या सम दूजौ ठौर सृष्टि में दृष्टि न आवै॥
यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुरकानन सुन्दर।
यहि अमरन कौ ओक यहि कहुँ बसत पुरन्दर॥
ताहि रसिकवर सुजन अवसि अवलोकन कीजै।
मम समान मन मुग्ध ललकि लोचन-फल लीजै॥

१२

अयोध्यासिंह उपाध्याय

कर्मवीर

देखकर बाधा विविध, बहु विघ्न घबराते नहीं।
रह भरोसे भाग के दुख भोग पछताते नहीं॥
काम कितना ही कठिन हो किंतु उकताते नहीं।
भीड़ में चंचल बने जो वीर दिखलाते नहीं॥
हो गये यक आन में उनके बुरे दिन भी भले।
सब जगह सब काल में वे ही मिले फूले फले॥१॥
आज करना है जिसे करते उसे हैं आज ही।
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही॥
मानते जी की हैं सुनते हैं सदा सब की कही।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आप ही॥
भूलकर वे दूसरों का मुँह कभी तकते नहीं।
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं॥२॥
जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं।
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं॥
आज कल करते हुए जो दिन गँवाते हैं नहीं।
यत्न करने में कभी जी जो चुराते हैं नहीं॥
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके किये।
वे नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिये॥३॥

व्योम को छूते हुए दुर्गम पहाड़ों के शिखर।
वे घने जंगल जहाँ रहता है तम आठों पहर॥
गर्जते जल-राशि की उड़ती हुई ऊँची लहर।
आग की भयदायिनी फैली दिशाओं में लहर॥
ये कँपा सकती कभी जिसके कलेजे को नहीं।
भूल कर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं॥४॥
चिलचिलाती धूप को जो चाँदनी देवें बना।
काम पड़ने पर करें जो शेर का भी सामना॥
जो कि हँस हँस के चबा लेते हैं लोहे का चना।
'है कठिन कुछ भी नहीं' जिनके है जी में यह ठना॥
कोस कितने ही चलें पर वे कभी थकते नहीं।
कौन सी है गाँठ जिसको खोल वे सकते नहीं॥५॥
ठीकरी को वे बना देते हैं सोने की डली।
रेत को करके दिखा देते हैं वे सुन्दर खली॥
वे बबूलों में लगा देते हैं चंपे की कली।
काक को भी वे सिखा देते हैं कोकिल-काकली॥
ऊसरों में हैं खिला देते अनूठे वे कमल।
वे लगा देते हैं उकठे काठ में भी फूल फल॥६॥
काम को आरंभ करके यों नहीं जो छोड़ते।
सामना करके नहीं जो भूल कर मुँह मोड़ते॥
वे गगन के फूल बातों से वृथा नहिं तोड़ते।
संपदा मन से करोड़ों की नहीं जो जोड़ते॥
बन गया हीरा उन्हीं के हाथ से है कारबन।
काँच को करके दिखा देते हैं वे उज्ज्वल रतन॥७॥
पर्वतों को काट कर सड़कें बना देते हैं वे।
सैंकड़ों मरुभूमि में नदियाँ बहा देते हैं वे॥

गर्भ में जल-राशि के बेड़ा चला देते हैं वे।
जंगलों में भी महा-मंगल रचा देते हैं वे॥
भेद नभतल का उन्होंने है बहुत बतला दिया।
है उन्होंने ही निकाली तार की सारी क्रिया॥८॥
कार्य-थल को वे कभी नहिं पूछते 'वह है कहाँ ?'
कर दिखाते हैं असंभव को वही संभव यहाँ।
उलझनें आकर उन्हें पड़ती हैं जितनी ही जहाँ।
वे दिखाते हैं नया उत्साह उतना ही वहाँ॥
डाल देते हैं विरोधी सैंकड़ों ही अड़चनें।
वे जगह से काम अपना ठीक करके ही टलें॥९॥
जो रुकावट डालकर होवे कोई पर्वत खड़ा।
तो उसे देते हैं अपनी युक्तियों से वे उड़ा॥
बीच में पड़कर जलधि जो काम देवे गड़बड़ा।
तो बना देंगे उसे वे क्षुद्र पानी का घड़ा॥
बन खँगालेंगे करेंगे व्योम में बाजीगरी।
कुछ अजब धुन काम के करने की उनमें है भरी॥१०॥
सब तरह से आज जितने देश हैं फूले फले।
बुद्धि, विद्या, धन, विभव के हैं जहाँ डेरे डले॥
वे बनाने से उन्हीं के बन गये इतने भले।
वे सभी हैं हाथ से ऐसे सपूतों के पले॥
लोग जब ऐसे समय पाकर जनम लेंगे कभी।
देश की औ जाति की होगी भलाई भी तभी॥११॥

फूल और काँटा

हैं जनम लेते जगह में एक ही
एक ही पौधा उन्हें है पालता।

रात में उन पर चमकता चाँद भी,
एक ही सी चाँदनी है डालता ॥१॥
मेह उन पर है बरसता एक सा,
एक सी उन पर हवायें हैं वहीं।
पर सदा ही यह दिखाता है हमें,
ढंग उनके एक से होते नहीं ॥२॥
छेद कर काँटा किसी की उँगलियाँ;
फाड़ देता है किसी का वर वसन।
प्यार—डूबी तितलियों के पर कतर,
भौंर का है वेध देता श्याम तन ॥३॥
फूल लेकर तितलियों को गोद में,
भौंर को अपना अनूठा रस पिला।
निज सुगन्धों औ' निराले रंग से,
है सदा देता कली जी की खिला ॥४॥
है खटकता एक सबकी आँख में,
दूसरा है सोहता सुर सीस पर।
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे,
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर ॥५॥

अनूठी बातें

जो बहुत बनते हैं उनके पास से।
चाह होती है कि कब कैसे टलें॥
जो मिलें जी खोल कर, उनके यहाँ।
चाहता है जी कि सर के बल चलें॥१॥
और की खोट देखती बेला।
टकटकी लोग बाँध देते हैं॥

पर कसर देखते समय अपनी।
बेतरह आँख मूँद लेते हैं ॥२॥

तुम भली चाल सीख लो चलना।
और भलाई करो भले जो हो॥
धूल में मत बटा करो रस्सी।
आँख में धूल डालते क्यों हो॥३॥

सध सकेगा काम तब कैसे भला।
हम करेंगे साधने में जब कसर॥
काम आयेंगी नहीं चालाकियाँ।
जब करेंगे काम आँखें बन्द कर॥४॥

खिल उठें देख चापलूसों को।
देख बेलौस को कुढ़े आँखें॥
क्या भला हम बिगड़ न जायेंगे।
जब हमारी बिगड़ गई आँखें॥५॥

तब टले तो हम कहीं से क्या टले।
डाँट बतला कर अगर टाला गया॥
तो लगेगी हाथ मलने आबरू।
हाथ गरदन पर अगर डाला गया॥६॥

है सदा काम ढंग से निकला।
काम बेढंगापन न देगा कर॥
चाह रख कर किसी भलाई की।
क्यों भला हों सवार गरदन पर॥७॥

बेहयाई, बहँक बनावट ने।
कस किसी ने नहीं दिया शिकञ्जे में॥
हित-ललक से भरी लगावट ने।
कर लिया है किसे न पंजे में॥८॥

फल बहुत ही दूर छाया कुछ नहीं।
क्यों भला हम इस तरह के ताड़ हों॥
आदमी हों और हों हित से भरे।
क्यों न मुट्ठी-भर हमारे हाड़ हों॥९॥

बीनना, सीना, पिरोना, कातना।
गूँधना, लिखना न आता है कहें॥
काम की यह बात है हर काम में।
बैठता है हाथ बैठाते रहें॥१०॥

बेतरह बेध बेध क्यों देवें।
भेद है जीभ और नेज़े में॥
बात से छेद छेद करके क्यों।
छेद कर दे किसी कलेजे में॥११॥

जीभ को बस में रखें काया कसें।
क्यों लहू करके किसी का सुख लहें॥
मारना जी का बहुत ही है बुरा।
जी न मारें मारते जी को रहें॥१२॥

चाहिए सारे बखेड़े दूर कर।
बात आपस की उठाने को उठें॥
आँख उठती दीन दुखिया पर रहे।
पाँव गिरतों को उठाने को उठें॥१३॥

निजता

हैं डराते न राजसी कपड़े।
क्यों रहे वह न चीथड़े पहने॥
धूल से तन भरा भले ही हो।
हैं लुभाते न फूल के गहने॥१॥

है धनी तो धनी रहे कोई।
है उसे लाख पास का पैसा ॥
धूर पर, बैठ दिन बिताती है।
सेज पर आँख डालना कैसा ॥२॥

हों किसी के महल बड़े ऊँचे।
वह उन्हें देख ही नहीं पाती ॥
क्यों न होवे गिरी पड़ी टूटी।
झोंपड़ी है उसे बहुत भाती ॥३॥

लोग खायें मिठाइयाँ मेवे।
घर में हो दूध की नदी बहती ॥
है उसे साग पात से मतलब।
वह नहीं मुँह निहारती रहती ॥४॥

बालकर आसमान पर दीया।
क्यों किसी की न जोती हो जगती ॥
देखकर आँखें और की मुँदती।
है गरीबी उसे भली लगती ॥५॥

लोग सारी सवारियों पर चढ़।
नित फिरें क्यों न मूँछ फटकारे॥
देख उनसे अनेक को पिसते।
हैं उसे पाँव ही बहुत प्यारे ॥६॥

पीसना पेरना नहीं भाता।
कब किसी को कहाँ सताती है ॥
क्यों बने लोग बागवाली वह।
बेकसी ही उसे बसाती है ॥७॥

क्यों ललाती रहे ललक में पड़।
किस लिए हो सुखी लहु गारे ॥

चींटियों सी चली न कब बच-बच।
भिड़ नहीं है कि डंक वह मारे ॥८॥

सादगी को पसन्द करती है।
बेबसी देख है सुखी रहती ॥
साहबी क्यों न हो बड़ी सबसे।
वह उसे है लहू भरी कहती ॥९॥

गोद में आन-बान की सोई।
देखती है बड़े-बड़े सपने ॥
रोब को मानती नहीं निजता।
मस्त रहती है रंग में अपने ॥१०॥

राधा की लोकसेवा

राधा जाती प्रति-दिवस थीं पास नन्दाङ्गना के,
नाना-बातें कथन करके थीं उन्हें बोध देतीं।
जो वे होतीं परम-व्यथिता मूर्छिता या विपन्ना,
तो वे आठों-पहर उनकी सेवना में बितातीं ॥
घण्टों लेके हरि-जननि को गोद में बैठती थीं,
वे थीं नाना-जतन करतीं पा उन्हें शोक-मग्ना।
धीरे-धीरे चरण सहला औ' मिटा चित्त-पीड़ा,
हाथों से थीं युगल-दृग के वारि को पोंछ देतीं ॥
हो उद्विग्ना परम जब यों पूछती थीं यशोदा,
'क्या आवेंगे न अब ब्रज में जीवनाधार मेरे ?'
तो वे धीरे मधुर स्वर में हो विनीता बतातीं,
'हाँ आवेंगे, व्यथित ब्रज को श्याम कैसे तजेंगे ?'
आता ऐसा कथन करते वारि राधा-दृगों में,
बूँदों-बूँदों टपक पड़ता गाल पै जो कभी था।

जो आँखों से सदुख उसको देख पातीं यशोदा,
तो धीरे यों कथन करतीं 'खिन्न हो तू न बेटी' ॥
होके राधा विनत कहतीं 'मैं नहीं रो रही हूँ,
आता मेरे युगल दृग में नीर आनन्द का है।
जो होता है पुलक, करके आपकी चारु सेवा,
हो जाता है प्रकटित वही वारि द्वारा दृगों में ॥
वे थीं प्रायः व्रज-नृपति के पास उत्कण्ठ जातीं,
नाना-सेवा स्व-कर करतीं क्लान्तियाँ थीं मिटातीं।
बातों ही में विभव-जग की तुच्छता थीं दिखातीं,
जो वे होते विकल, पढ़ के शास्त्र नाना सुनातीं ॥
होतीं मारे मन यदि कहीं गोप की पंक्ति बैठी,
किंवा होता विकल उनको गोप कोई दिखाता।
तो कार्यों में विविध, उनको यत्नतः वे लगातीं,
औ' ये बातें कथन करतीं भूरि गम्भीरता से ॥
'जी से जो आप सब करते प्यार प्राणेश को हैं,
तो पा भू में पुरुष-तन को खिन्न होके न बैठें।
उद्योगी हो परम रुचि से कीजिये कार्य ऐसे,
जो प्यारे हैं परम-प्रिय के विश्व के प्रेमिकों के ॥'
जो वे होता मलिन लखतीं गोप के बालकों को,
देतीं पुष्पों रचित उनको मुग्धकारी खिलौने।
शिक्षा दे-दे विविध उनसे कृष्ण-लीला करातीं,
घण्टों बैठी परम रुचि से देखतीं तद्गता हो ॥
पाई जातीं दुखित जितनी अन्य गोपाङ्गना थीं,
राधा द्वारा सुखित वह भी थीं यथा-रीति होतीं।
गा के लीला स्व-प्रियतम की वेणु-वीणा बजा के,
बातें प्यारी विविध कहके वे उन्हें बोध देतीं ॥

संलग्ना हो विविध कितने सान्त्वना-कार्य में भी,
वे सेवा थीं सतत करती वृद्ध-रोगी जनों की।
दीनों-हीनों निवल विधवा आदि को मानती थीं,
पूजी जाती व्रज-अवनि में देवि-तुल्या अतः थीं॥
खो देती थीं कलह-जनिता आधि के दुर्गुणों को,
धो देती थीं मलिन मन की व्यापिनी कालिमाएँ।
बो देती थीं हृदय-तल में बीज भावज्ञता का,
वे थीं क्लेशों-दलित-गृह में शांति-धारा बहातीं॥
आटा चींटी, विहग-गन थे वारि औ' अन्न पाते,
देखी जाती सदय उनकी दृष्टि कीटादि में भी।
पत्तों को भी न तरुवर के वे वृथा तोड़ती थीं,
जी से वे थीं निरत रहती भूत-संवर्द्धना में॥
वे छाया थीं सुजन-शिर की, शासिका थीं खलों की,
कङ्गालों की परम निधि थीं, औषधि पीड़ितों की।
दीनों की थीं भगिनि, जननी थीं अनाथाश्रितों की,
आराध्या थीं व्रज-अवनि की, प्रेमिका विश्व की थीं॥
जैसा व्यापा दुसह-दुःख था गोप गोपाङ्गना का,
वैसी ही थीं सदय-हृदया स्नेह की मूर्ति राधा।
जैसी मोहाचलित व्रज में तामसी रात आई,
वैसी ही वे लसित उसमें कौमुदी के समा थीं॥
सच्चे-स्नेही अवनिजन के देश के श्याम-जैसे,
राधा-जैसी सदय-हृदया विश्व के प्रेम-डूबी।
हे विश्वात्मा, भरत भुवि के अङ्क में और आवे,
ऐसी व्यापी विरह-घटना किन्तु कोई न होवे॥

१३

मैथिलीशरण गुप्त

अभिमन्यु का रणगमन

(१)

'हे तात ! तजिए सोच को, है काम ही क्या क्लेश का ?
  प्रकटित करूँगा व्यूह में मैं द्वार शीघ्र प्रवेश का।'
यों पाँडवों से कह, समर को वीर वह सज्जित हुआ,
  छवि देख उसकी उस समय सुरराज भी लज्जित हुआ॥

(२)

नर-देव-सम्भव वीर वह रण-मध्य जाने के लिये,
  बोला वचन निज सारथी से रथ सजाने के लिये।
यह विकट साहस देख उसका, सूत विस्मित हो गया,
  कहने लगा इस भाँति फिर वह देख उसका वय नया॥

(३)

'हे शत्रुनाशन ! आपने यह भार गुरुतर है लिया,
  हैं द्रोण रण-पण्डित, कठिन है व्यूह-भेदन की क्रिया।
रण-विज्ञ यद्यपि आप हैं, पर, सहज ही सुकुमार हैं,
  सुख-सहित नित पोषित हुए, निजवंश प्राणधार हैं॥'

(४)

सुन सारथी की यह विनय बोला वचन वह वीर यों—
  करता घनाघन गगन में निर्घोष अति गम्भीर ज्यों।

हे सारथे ! हैं द्रोण क्या, आवें स्वयं देवेन्द्र भी,
वे भी न जीतेंगे समर में, आज क्या, मुझसे कभी ॥

(५)

श्री राम के हयमेध से अपमान अपना मान के,
मख-अश्व जब लव और कुश ने जय किया रण ठान के।
अभिमन्यु षोडश वर्ष का फिर क्यों लड़े रिपु से नहीं,
क्या आर्य-वीर विपक्ष वैभव देखकर डरते कहीं ॥

(६)

सुन कर गजों का घोष उसको समझ निज अपयश-कथा,
उन पर झपटता सिंह-शिशु भी रोष कर जब सर्वथा।
फिर व्यूह-भेदन के लिये अभिमन्यु उद्यत क्यों न हो,
क्या वीर बालक शत्रु का अभिमान सह सकते कहो ?

(७)

मैं सत्य कहता हूँ सखे ! सुकुमार मत मानो मुझे,
यमराज से भी युद्ध को प्रस्तुत सदा जानो मुझे।
है और की तो बात ही क्या, गर्व मैं करता नहीं,
माता तथा निज तात से भी समर में डरता नहीं ॥

(८)

ज्यों ऊनषोडश वर्ष के राजीवलोचन राम ने,
मुनि-मख किया था पूर्ण वध कर राक्षसों के सामने।
कर व्यूह-भेदन आज त्यों ही वैरियों को मार के,
निज तात का मैं हित करूँगा विमल यश विस्तार के ॥'

(९)

यों कह वचन निज सूत से वह वीर रण में मन दिये,
पहुँचा शिविर में उत्तरा से विदा लेने के लिए।
सब हाल उसने निज प्रिया से जब कहा जाकर वहाँ,
कहने लगी तब वह स्वपति के अति निकट आकर वहाँ ॥

(१०)

'मैं यह नहीं कहती कि रिपु से जीवितेश लड़ें नहीं,
तेजस्वियों की आयु भी देखी भला जाती कहीं ?
मैं जानती हूँ नाथ ! यह मैं मानती भी हूँ तथा—
उपकरण से क्या, शक्ति में ही सिद्धि रहती सर्वथा ॥

(११)

क्षत्राणियों के अर्थ भी सबसे बड़ा गौरव यही
सज्जित करें पति-पुत्र को रण के लिए जो आप ही।
जो वीर पति के कीर्ति-पथ में विघ्न-बाधा डालतीं—
होकर सती भी वह कहाँ कर्त्तव्य अपना पालतीं ?

(१२)

अपशकुन आज परन्तु मुझको हो रहे सच जानिए,
मत जाइए सम्प्रति समर में प्रार्थना यह मानिए।
जाने न दूँगी आज मैं प्रियतम तुम्हें संग्राम में,
उठती बुरी हैं भावनाएँ हाय इस हृद्धाम में ॥

(१३)

है आज कैसा दिन न जाने, देव-गण अनुकूल हों,
रक्षा करें प्रभु मार्ग में जो शूल हों वे फूल हों।
कुछ राज-पाट न चाहिए, पाऊँ न क्यों मैं त्रास ही,
हे उत्तरा के धन ! रहो तुम उत्तरा के पास ही ॥'

(१४)

कहती हुई यों उत्तरा के नेत्र जल से भर गये,
हिम के कणों से पूर्ण मानो हो गये पङ्कज नये।
निज प्राणपति के स्कन्ध पर रख कर वदन वह सुन्दरी,
करने लगी फिर प्रार्थना नाना प्रकार व्यथा-भरी ॥

(१५)

यों देखकर व्याकुल प्रिया को सान्त्वना देता हुआ,
उसका मनोहर पाणि-पल्लव हाथ में लेता हुआ,
करता हुआ वारण उसे दुर्भावना की भीति से,
कहने लगा अभिमन्यु यों प्यारे वचन अति प्रीति से—

(१६)

'जीवनमयी, सुखदायिनी, प्राणाधिके, प्राण प्रिये !
कातर तुम्हें क्या चित्त में इस भाँति होना चाहिए।
हो शान्त सोचो तो भला, क्या योग्य है तुमको यही,
हा ! हा ! तुम्हारी विकलता जाती नहीं मुझसे सही॥

(१७)

वीर स्नुषा तुम, वीर रमणी, वीर गर्भा हो तथा,
आश्चर्य, जो मम रण-गमन से हो तुम्हें फिर भी व्यथा !
हो जानती बातें सभी कहना हमारा व्यर्थ है;
बदला न लेना शत्रु से कैसा अधर्म अनर्थ है !

(१८)

निज शत्रु का साहस कभी बढ़ने न देना चाहिए।
बदला समर में वैरियों से शीघ्र लेना चाहिए।
पापी जनों को दण्ड देना चाहिए समुचित सदा,
वर-वीर क्षत्रिय-वंश का कर्त्तव्य है यह सर्वदा॥

(१९)

इन कौरवों ने हा ! हमें सन्ताप कैसे हैं दिये,
सब सुन चुकी हो तुम इन्होंने पाप जैसे हैं किये।
फिर भी इन्हें मारे बिना हम लोग यदि जीते रहें,
तो सोच लो संसार भर के वीर हमसे क्या कहें ?

(२०)

जिस पर हृदय का प्रेम होता सत्य और समग्र है,
उसके लिए चिन्तित तथा रहता सदा वह व्यग्र है।
होता इसी से है तुम्हारा चित्त चंचल हे प्रिये!
यह सोच कर ही अब तुम्हें शंकित न होना चाहिए॥

(२१)

रण में विजय पाकर प्रिये! मैं शीघ्र आऊँगा यहाँ,
चिन्ता करो मन में न तुम, होती मुझे पीड़ा महाँ।
देखो भला भगवान ही जब हैं हमारे पक्ष में,
जीवित रहेगा कौन फिर आकर हमारे लक्ष्य में?'

(२२)

यों धैर्य देकर उत्तरा को हो विदा सद्भाव से,
वीराग्रणी अभिमन्यु पहुँचा सैन्य में अति चाव से।
स्वर्गीय साहस देख उसका सौगुने उत्साह से,
भरने लगे सब सैनिकों के हृदय हर्ष प्रवाह से॥

कैकेयी का पश्चात्ताप

तदनन्तर बैठी सभा उटज के आगे,
नीले वितान के तले दीप बहु जागे।
टकटकी लगाये नयन सुरों के थे वे,
परिणामोत्सुक उन भयातुरों के थे वे।
उत्फुल्ल करोंदी-कुंज वायु रह रह कर,
करती थी सबको पुलक-पूर्ण मह मह कर।
वह चन्द्रलोक था, कहाँ चाँदनी वैसी,
प्रभु बोले गिरा गंभीर नीरनिधि जैसी।
'हे भरतभद्र, अब कहो अभीप्सित अपना,'
सब सजग हो गये, भंग हुआ ज्यों सपना।

'हे आर्य, रहा क्या भरत, अभीप्सित अब भी ?
मिल गया अकंटक राज्य उसे जब, तब भी ?
पाया तुमने तरुतले अरण्य-बसेरा,
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा ?
तनु तड़प-तड़प कर तप्त तात ने त्यागा,
क्या रहा अभीप्सित और तथापि अभागा ?
हा ! इसी अयश के हेतु जनन था मेरा।
निज जननी ही के हाथ हनन था मेरा।
अब कौन अभीप्सित और आर्य, वह किसका ?
संसार नष्ट है भ्रष्ट हुआ घर जिसका।
मुझसे मैंने ही आज स्वयं मुँह फेरा,
हे आर्य, बता दो तुम्हीं अभीप्सित मेरा ?'
प्रभु ने भाई को पकड़ हृदय पर खींचा,
रोदन-जल से सविनोद उन्हें फिर सींचा।
'उसके आशय की थाह मिलेगी किसको,
जन कर जननी ही जान न पाई जिसको ?'
'यह सच है तो अब लौट चलो तुम घर को,'
चौंके सब सुन कर अटल कैकेयी स्वर को।
'हाँ, जन कर भी मैंने न भरत को जाना,
सब सुन लें तुम ने स्वयं अभी यह माना।
यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,
अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया।
दुर्बलता का ही चिह्न विशेष शपथ है,
पर, अबलाजन के लिए कौनसा पथ है ?
यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊँ,
तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ।

ठहरो, मत रोको मुझे, कहूँ सो सुन लो,
पाओ यदि उसमें सार उसे सब चुन लो।
करके पहाड़ सा पाप मौन रह जाऊँ?
राई भर भी अनुताप न करने पाऊँ?'
'क्या कर सकती थी, मरी मन्थरा दासी,
मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी।
जल पंजरगत अब अरे अधीर, अभागे,
वे ज्वलित भाव थे स्वयं तुझी में जागे,
पर था केवल क्या ज्वलित भाव ही मन में?
क्या शेष बचा था कुछ न और इस जन में?
कुछ मूल्य नहीं वात्सल्य मात्र, क्या तेरा?
पर आज अन्य सा हुआ वत्स भी मेरा?
थूके, मुझ पर त्रैलोक्य, भले ही थूके,
जो कोई जो कह सके, कहे, क्यों चूके?
छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,
रे राम, दुहाई करूँ और क्या तुझसे?
कहते आते थे यही अभी नर-देही,
'माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले ही।'
अब कहें सभी यह हाय! विरुद्ध विधाता,
'है पुत्र पुत्र ही, रहे कुमाता माता?'
बस मैंने इसका बाह्य मात्र ही देखा,
दृढ़ हृदय न देखा, मृदुल गात्र ही देखा।
परमार्थ न देखा, पूर्ण स्वार्थ ही साधा,
इस कारण ही तो हाय! आज यह बाधा।
युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
'रघुकुल में भी थी एक अभागी रानी।'

निज जन्म जन्म में सुने जीव यह मेरा,
धिक्कार उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।'
'सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,
जिस जननी ने है जना भरत-सा भाई।'
पागल-सी प्रजा के साथ सभा चिल्लाई,
'सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।'

राहुल-जननी

'माँ, कह एक कहानी।'
'बेटा, समझ लिया क्या तूने
मुझको अपनी नानी?'
'कहती है मुझसे यह चेटी,
तू मेरी नानी की बेटी!
कह माँ, कह लेटी ही लेटी,
राजा था या रानी?'
'राजा था या रानी?
माँ, कह एक कहानी।'
'तू है हठी मानधन मेरे,
सुन, उपवन में बड़े सवेरे,
तात भ्रमण करते थे तेरे,
जहाँ सुरभि मनमानी।'
'जहाँ सुरभि मनमानी?
हाँ, माँ यही कहानी।'
'वर्ण - वर्ण के फूल खिले थे,
झलमल कर हिम-बिन्दु मिले थे,
हलके झोंके हिले-मिले थे,
लहराता था पानी।'

'लहराता था पानी ?
हाँ, हाँ, यही कहानी।'
'गाते थे खग कल-कल स्वर से,
सहसा एक हंस ऊपर से,
गिरा, विद्ध होकर खर-शर से,
हुई पक्ष की हानी।'
'हुई पक्ष की हानी ?
करुणा-भरी कहानी।'
'चौंक उन्होंने उसे उठाया,
नया जन्म-सा उसने पाया।
इतने में आखेटक आया,
लक्ष्य-सिद्धि का मानी।'
'लक्ष्य सिद्धि का मानी ?
कोमल-कठिन कहानी।'
'माँगा उसने आहत पक्षी,
तेरे तात किंतु थे रक्षी।
तब उसने, जो था खगभक्षी—
हठ करने की ठानी।
'हठ करने की ठानी।'
अब बढ़ चली कहानी।'
'हुआ विवाद सदय-निर्दय में,
उभय आप ही थे स्वविषय में,
गई बात तब न्यायालय में,
सुनी सभी ने जानी।'
'सुनी सभी ने जानी?
व्यापक हुई कहानी।'

'राहुल, तू निर्णय कर इसका,
न्याय पक्ष लेता है किसका।'
सुन लूँ तेरी बानी,
'माँ मेरी क्या बानी?
मैं सुन रहा कहानी।'
'कोई निरपराध को मारे,
तो क्यों अन्य उसे न उबारे?
रक्षक पर भक्षक को वारे,
न्याय दया का दानी।'
'न्याय दया का दानी?
तूने गुनी कहानी।'

१४

जयशंकर प्रसाद

हमारा देश

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को,
मिलता कूल-किनारा।
सरस तामरस गर्भ-विभा पर,
नाच रही तरु-शिखा मनोहर
मंगल कुंकुम सारा।
अरुण यह मधुमय देश हमारा।
हेम-कुम्भ ले उषा सवेरे,
भारती ढुलकाती सुख मेरे।
मदिर ऊंघते रहते रजनी भर,
जब जग कर तारा।
अरुण यह मधुमय देश हमारा।
लघु सुरधनु-से पंख पसारे
सुरभि-पवन अनुकूल सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किये,
समझ नीड़ निज प्यारा।
अरुण यह मधुमय देश हमारा।
बरसाती आंखों के बादल,

बनते जहाँ भरे करुण-जल ।
लहरें टकराती अनन्त की,
पाकर जहां सहारा ।
अरुण यह मधुमय देश हमारा।

भारतवर्ष

हिमालय के आंगन में उसे,
प्रथम किरणों का दे उपहार ।
उषा ने हंस अभिनन्दन किया,
और पहनाया हीरक हार ॥१॥
जगे हम लगे जगाने विश्व,
लोक में फैला फिर आलोक ।
व्योम-तम-पुञ्ज हुआ तब नाश
अखिल संसृति हो उठी अशोक ॥२॥
विमल वाणी ने वीणा ली
कमल कोमल कर में सप्रीत ।
सप्त-स्वर सप्त-सिन्धु में उठे,
छिड़ा तब मधुर साम-संगीत ॥३॥
बचाकर बीजरूप से सृष्टि,
नाव पर झेल प्रलय का शीत ।
अरुण-केतन लेकर निज हाथ
वरुण-पथ में हम बढ़े अभीत ॥४॥
धर्म का ले लेकर जो नाम
हुआ करती बलि, कर दी बन्द ।
हमीं ने दिया शान्ति सन्देश,
सुखी होते देकर आनन्द ॥५॥

विजय केवल लोहे की नहीं
धर्म की रही धरा पर धूम।
भिक्षु होकर रहते सम्राट्,
दया दिखलाती घर घर घूम ॥६॥
यवन को दिया दया का दान,
चीन को मिली धर्म की दृष्टि
मिला था स्वर्ण-भूमि को रत्न,
शील की सिंहल को भी सृष्टि ॥७॥
किसी का हमने छीना नहीं,
प्रकृति का रहा पालन यहीं।
हमारी जन्म भूमि थी यहीं,
कहीं से हम आये थे नहीं ॥८॥
जातियों का उत्थान पतन,
आंधियां झड़ी प्रचण्ड समीर।
खड़े देखा, झेला हँसते,
प्रलय में पले हुए हम वीर ॥९॥
चरित थे पूत, भुजा में शक्ति,
नम्रता रही सदा सम्पन्न।
हृदय के गौरव में था गर्व,
किसी को देख न सके विपन्न ॥१०॥
हमारे संचय में था दान,
अतिथि थे सदा हमारे देव।
वचन में सत्य, हृदय में तेज,
प्रतिज्ञा में रहती थी टेव ॥११॥
वही है रक्त वही है देश
वही है साहस, वैसा ज्ञान।

वही है शांति, वही है शक्ति
वही हम दिव्य आर्य सन्तान ॥१२॥
जियें तो सदा इसी के लिये,
यही अभिमान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व,
हमारा प्यारा भारतवर्ष ॥१३॥

अशोक की कलिंग-विजय

गंगा तट पर पाटलीपत्र नगरी विशाल,
थी बसी किये वैभव से अपना उच्च भाल!
सुन्दर, सुरचित, रंगीन अनेकों उच्च धाम,
प्रासाद सुसज्जित, कुञ्ज-पुञ्ज, मन्दिर ललाम!
थे सुखी प्रजाजन, मगध राज्य था कीर्तिवान्,
यह था भारत का स्वर्ण काल, मंगल-विहान्!
शासक था वीर अशोक, मौर्य कुल का दीपक,
जिसके चरणों पर झुके नरेशों के मस्तक!
जिसके वैभव पर मुग्ध हुईं जग की नजरें,
जयकार किया करती थीं गंगा की लहरें!
वह मुस्का देता था, बज उठते थे नूपुर,
मंजीर, पखावज, वीणा के मतवाले सुर!
चलती पीछे ले चँवर सलोनी बालाएँ,
दासियाँ लिये थालों में कुम-कुम मालाएँ!
संगीतों से गुञ्जित रहता था राजभवन,
पुष्पित, मधु-सिंचित राजमार्ग प्रतिपल, प्रतिक्षण!
वह राजसभा सज्जित बलिष्ठ रणधीरों से,
मुखरित नृत्यों से, शोभित लट, पट, चीरों से!

यह था अशोक का यौवन-मद शृङ्गार-प्रेम,
साक्षी थे गंगा के विस्तृत तट, स्वच्छ हेम!
पर जैसे वह झूमा मादक झंकारों में,
वैसे ही घूमा निर्भय रण-हुंकारों में!
वह था उसकी आकांक्षा का अल्हड़ प्रवाह,
जिसमें बहकर सत्ताएँ उठती थीं कराह!
जिस ओर किया उसने इंगित तूफान उठा,
रण की तंत्री पर महानाश का गान उठा!
धरती डोली, हुंकृत हो काँपा नभ-प्रदेश,
मागध बल से डर हुआ प्रकम्पित आर्य देश!
इतिहास न भूल सकेगा वह घटना महान्,
प्रातः वेला, लाली से रंजित आसमान!
कलियाँ खिलतीं पाटलीपुत्र के कुञ्जों में,
भौंरे मँडराते गाते विहग निकुञ्जों में!
लेकिन सहसा ही जाग उठा जब तूर्यनाद,
जागे योद्धा भुजदंडों में ले रण-प्रमाद!
दौड़े उद्घोषक गली-गली उन्मत्त, क्रुद्ध,
कहते 'कलिंग से आज मगध का ठना युद्ध!'
गृह-गृह में गूँजे मंगलमय राष्ट्रीय गान,
धरती चौंकी, रह गया देखता आसमान।
आ जुड़ीं गवाक्षों में मन्थर गति ज्यों मराल,
कुल-वधुएँ, बालाएँ ले लेकर पुष्प थाल।
तब राजभवन से चले अनूठे सेनानी,
चम-चम चमका नंगी तलवारों का पानी।
पैदल, रथ, घोड़े शोर मचाते हुए चले,
गजराज गर्व से सूँड हिलाते हुए चले।

ध्वज लहराये ऊँचे भालों के फलक उठे,
स्वर्णिम किरणों में वीरों के मुख दमक उठे।
झूमती अंग चूमती चली मंथर बयार,
गूँजा दूरी तक विजय-घोष-स्वर बार-बार।
गृह-गृह से बरसे खील-फूल, ढँक गई राह,
पर रुका न क्षण-भर वीरवाहिनी का प्रवाह।
गज पर आरूढ़ अशोक, पुष्ट तन, महाबाहु,
उस पूर्ण चन्द्र को ग्रसे न ऐसा एक राहु।
जगमग-जगमग किरणों में स्वर्णिम शिरस्त्राण,
गंभीर नयन, पट लहराते, कटि में कृपाण।
यों चली वीर-वाहिनी पान कर गंगा जल,
अपने बीहड़ पथ पर आगे बढ़ती प्रतिपल।
ग्रामों को करती चकित डराती नगरों को,
नज़रों को करती थकित, हिलाती डगरों को।
दिन-भर चलती, सन्ध्या के क्षण करती पड़ाव,
फिर चल पड़ती हटता ज्योंही तम का प्रभाव।
टीले, पर्वत, उर्वर, ऊसर, सरिता, निर्झर,
आगे आये फिर छूट गये पीछे पथ पर।
आई कलिंग-सीमा यों ही चलते-चलते,
टिक गई फौज निर्भय रवि के ढलते-ढलते।
आए रजनी के प्रहर और फिर बीत गये,
अपने-अपने घर शशि बाला के मीत गये।
पक्षी जागे प्राची दिशि में फूटी लाली,
जग कर अशोक ने दृष्टि सैनिकों पर डाली।
जागे योद्धा प्रारम्भ हो गई तैयारी,
गज, रथ, हय और पदाति सजे बारी-बारी।

शरमय तर्कस स्वर्णिम किरणों में दमक उठे,
असि, दंड, क्षुरप्र, भल्ल, कवचादिक चमक उठे।
हो उठा ध्वनित राष्ट्रीय गान से गगन प्रान्त,
हो उठे अश्व चंचल, गज भी रण को अशान्त।
कुछ क्षणों बाद चल दी सेना मर मिटने को,
उस ओर शत्रु तत्पर था रण में डटने को।
डंका गूँजा, ज्यों गूँज उठे सावन-घन-दल,
रज उड़ी गगन में, मची दिशाओं में हलचल।
दोनों पक्षों से प्रलयंकर जयघोष हुआ,
यह लगा कि जैसे स्वयं रोष को रोष हुआ।
छिड़ गया घोर संग्राम वह चली रक्तधार,
जिस ओर दृष्टियाँ गई दिखी तलवार-धार।
ताना विषाक्त तीरों ने दिशि-दिशि में वितान,
उड़कर सर्पों ने ढाँक लिया ज्यों आसमान!
घायल, मुर्दे, पदमर्दित, लुण्ठित रुण्ड-मुण्ड,
लाशों के बने पहाड़, रक्त के भरे कुण्ड।
पर कहाँ मगध की महाशक्ति वह तूफ़ानी,
औ' कहाँ कलिंग! ज्वलंत तवे पर ज्यों पानी!
हारे कलिंगवासी जीते मागध मानी,
लेकिन अशोक की आँखों में आया पानी।
भूला मद-मत्सर वह, जब देखी रक्तधार,
उसका उर बोला—'जीत नहीं यह हुई हार।
माना साम्राज्य मिला पर कितना मूल्यवान,
शत-शत घायल, बन्दी, लाखों तज गये प्राण।
कितनी माँगों का आज लुटा सिंदूर आह,
कितने हृदयों की आज अधूरी रही चाह।

कितनी गोदियाँ हुईं सूनी, अंतर टूटे,
मेरी पशुता ने आज कोटियों घर लूटे।
यह रक्त धूल में सूख गया जो आज व्यर्थ,
कितने मानव रच देने में होता समर्थ।
इतिहास क्या कहेगा कि 'महापशु था अशोक',
जग थूकेगा इन काले कृत्यों को विलोक !!
संघर्ष ! आह !! क्या आज हो गया मैं पागल,
पत्थर का हृदय, किन्तु नयनों में खारा जल।
निश्चय ! निश्चय !! मैं आज न दुर्बल या पागल,
कंचन बनता जाता है मेरा उर जल-जल।
सेनापति एकत्रित करलो अपना दल-बल,
पत्थर पर आज जा रहा खिलने को शतदल।'
सेना एकत्रित हुई और बोला अशोक,
करुणा से छलके नेत्रों से सबको विलोक।
'मेरी अजेय सेना के प्यारे योद्धा-गण।
मैंने माना तुम सब ने जीत लिया है रण।
पर सच बतलाओ क्या तुमने जीते वे मन,
तुमने रण में मारे हैं जिनके प्रेमीजन।
यह रक्त कि जो निष्फल लुंठित है भूतल पर,
धधकेगा एक दिवस विप्लव ज्वाला बनकर।
उस प्रतिहिंसा में धधक उठेगा आर्य-देश,
होगा पद्मर्दित मुकुट, राज सत्ता अशेष।
यह श्रेयस्कर, बर्बरता पशुता के निशान,
ये शस्त्र फेंक दो आज तुच्छ तृण के समान।
अविलम्ब घायलों का हिल-मिल उपचार करो,
मानव हो तुम, मानवता का व्यवहार करो।

कर दो बन्धन से मुक्त बन्दियों को तुरन्त,
कह दो कि 'तुम्हारा देश पराजित भी स्वतंत्र।'
मैं बना आज से बौद्ध अहिंसा का पोषक,
अनुसरण करूँगा सत्य-मार्ग जीवन जब तक।
मेरी सीमा में हो न कहीं भी अनाचार,
मानव का शासक शस्त्र नहीं, निस्सीम प्यार।"

किरण

किरण तुम क्यों बिखरी हो आज,
रँगी हो तुम किसके अनुराग,
स्वर्ण-सरसिज-किंजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग ॥१॥
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
मधुर मुरली-सी फिर भी मौन;
किसी अज्ञात विश्व की विकल—
वेदना-दूती सी तुम कौन ॥२॥
अरुण शिशु के मुख पर सविलास,
सुनहली लट घुँघराली कान्त।
नाचती हो जैसे तुम कौन ?—
उषा के अंचल में अश्रान्त ॥३॥
भला उस भोले मुख को छोड़,
और चूमोगी किसका भाल,
मनोहर यह कैसा है नृत्य,
कौन देता है सम पर ताल ॥४॥
कोकनद मधु धारा सी सरल,
विश्व में बहती हो किस ओर।

प्रकृति को देती परमानन्द,
उठाकर सुन्दर सरस हिलोर ॥५॥
स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन,
मिलाती हो उसे भूलोक ।
जोड़ती हो कैसा सम्बन्ध,
बना दोगी क्या विरज विशोक ॥६॥
सुदिन—मणि—वलय विभूषित उषा—
सुन्दरी के कर का संकेत—
कर रही हो तुम किसको मधुर,
किसे दिखलाती प्रेम-निकेत ॥७॥
चपल ! ठहरो कुछ लो विश्राम,
चल चुकी हो पथ शून्य अनन्त,
सुमन-मन्दिर के खोलो द्वार,
जगे फिर सोया वहाँ वसन्त ॥८॥

गीत

बीती विभावरी जाग री !
अम्बर-पनघट पर डुबो रही तारा-घट ऊषा नागरी ।
खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा,
किसलय का अञ्चल डोल रहा ।
लो यह लतिका भी भर लाई—
मधु मुकुल नवल रस गागरी ॥
अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये ।
तू अब तक सोई है आली !
आँखों में भरे विहाग री !

अभियान गीत

हिमाद्रि तुङ्ग शृङ्ग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती—
'अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पन्थ है—बढ़े चलो, बढ़े चलो !'
असंख्य कीर्तिरश्मियाँ,
विकीर्ण दिव्यदाह-सी,
सपूत मातृ-भूमि के—
रुको न शूर साहसी !
अराति सैन्य सिन्धु में—सुवाडवाग्नि से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो—बढ़े चलो बढ़े चलो ।

१५

माखनलाल चतुर्वेदी

पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ;
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ;
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि! डाला जाऊँ;
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ;
मुझे तोड़ लेगा वन-माली
उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक॥

भारतीय विद्यार्थी

समय जगाता है, हम सबको झटपट जग जाना ही होगा,
देख विश्व-सिद्धान्त कार्य में निर्भय लग जाना ही होगा।
दृढ़ करके मस्तिष्क मनस्वी बनकर वीर कहाना होगा,
पूर्ण ज्ञान-सर्वेश-चरण पर, जीवन-पुष्प चढ़ाना होगा।
यह स्वार्थी संसार एक दिन बने हमीं से जब परमार्थी,
तब हम कहीं कहा सकते हैं, सच्चे भारतीय विद्यार्थी॥१॥
समय एक पल भी न हमें, अब भाई, व्यर्थ बिताना होगा,
शक्ति बढ़ा गौरव-गिरीश पर, चढ़कर शौर्य दिखाना होगा।
सम्पति का उपयोग हमें अनुकूल बुद्धि से करना होगा,
बढ़ते हुए मार्ग में हमको नहीं कभी भी डरना होगा।

इस कर्तव्य-भूमि पर तृण-सम प्रण पर प्राण गँवाने होंगे,
वीरों ही के पद-चिह्नों पर अपने पैर जमाने होंगे ॥२॥
देख-देख भारत को उनके है बहती आँसू की धारा,
मानो यह बन गया उन्हीं से, सृष्टि-मेखला-सागर खारा।
पर अब अपनी ओर देख मन उनका धीरज धर पाया है,
यह संसार सदा नवयुवकों का ही दम भरता आया है।
'हम पर है सब भार'—बन्धु ! यह बात ध्यान से टले न देखो,
विश्वासी वे आर्य स्वर्ग में कर-कमलों को मलें न देखो ॥३॥
ब्रह्मचर्य-व्रत भीष्म पितामह को आगे रख धार रहे हों,
वीर तेज में अर्जुन बन कर, दुर्जन-दल को मार रहे हों।
सादेपन में हो सुतीक्ष्ण पागल से प्रण को पाल रहे हों,
न्याय नीति में विदुर सरीखे तीखे वाक्य निकाल रहे हों।
कर्म-क्षेत्र हमको मिल जावे, हों बस इसी बात के प्रार्थी,
ऋषियों की सन्तान वही हैं, अद्भुत भारतीय विद्यार्थी ॥४॥
सीख रहे हों पश्चिम से जो धर्मस्थल में मरने के गुण,
नैतिक छान-बीन की दृढ़ता मर्मस्थल में धरने के गुण।
हृदय, हाथ, मस्तिष्क मिलाकर, कर्मस्थल जय करने के गुण,
अपनी कार्य-शक्ति से दुनिया भर के मन वश करने के गुण।
वे ही हैं माता के रक्षक, वे ही हैं सच्चे शिक्षार्थी,
वे ही हैं लक्ष्यों के लक्षक, प्यारे भारतीय विद्यार्थी ॥५॥
भारतीय शालाओं के गुण विश्वविदित करने वाले हों,
भारतीय शिक्षा का सूरज शीघ्र उदित करने वाले हों।
भारतीय सागर को बढ़कर नित्य मुदित करने वाले हों,
भारतीय-निन्दक-समूह अविलम्ब क्षुभित करने वाले हों।
परिवर्तन कर देने वाले, देवि भारती के आज्ञार्थी,
निस्सन्देह कहा सकते हैं ऐसे भारतीय विद्यार्थी ॥६॥

आज जगत की राज-पुस्तिका में भारत का नाम नहीं है,
वर्तमान आविष्कारों में हाय! हमारा काम नहीं है।
रोता है सब देश, देश में दानों को भी दाम नहीं है,
कहते हैं सब लोग, यहाँ के लोगों में कुछ राम नहीं है।
नाम नहीं है! काम नहीं है! दाम नहीं है! राम नहीं है!
तो बस इन्हें प्राप्त करने तक हमको भी आराम नहीं है ॥७॥
घर-घर में जगदीशचन्द्र बसु होना काम हमारा ही है,
बन कर कृषक, गर्व से कृषि का बोना काम हमारा ही है।
शिल्प बढ़ा कर ताजमहल फिर रच कर के दिखलाने होंगे,
व्यापारी बन देश-देश में अपने पोत घुमाने होंगे।
रेल, तार, आकाश-यान ये हम क्या कभी बना न सकेंगे?
शुद्ध स्वदेशी-पीताम्बर क्या माधव को पहिना न सकेंगे ॥८॥
पहिले बाल भारत हो सिंहों के भी दाँत दबाना होगा,
पुनः भरत हो, बन्धु-प्रेम पर अपनी भेंट चढ़ाना होगा।
तभी भरत हो, देह-मान तज, विश्वरूप बन जाना होगा,
फिर भारत के पुत्र भरत कहला कर गौरव पाना होगा।
जब तक नहीं भरत-कुल-दूषण भूषण हो होंगे प्रेमार्थी,
तब तक कैसे कहा सकेंगे—'विजयी भारतीय विद्यार्थी' ॥६॥
भरत माता अपने इन पुत्रों को पहिले का-सा बल दे,
हे भारती! दया कर क्षण में सबकी दुर्बलता तू दल दे।
भारत की सच्ची आत्माएँ आगे बढ़ें, उन्हें क्यों भय हो,
भारतवासी मिलकर गावें—'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो'।
यह सुनकर जगती तल कह दे—'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो'
प्रतिध्वनि में जगदीश्वर कह दें 'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो'॥१०॥
जीवन-रण में वीर! पधारो मार्ग तुम्हारा मंगलमय हो,
गिरि पर चढ़ना, गिरि पर बढ़ना, तुमसे सब विघ्नों को भय हो।

नेम निभाओ, प्रेम दृढ़ाओ, शीश चढ़ा भारत उद्धारो,
देवों से भी कहला लो यह—'विजयी भारतवर्ष पधारो।'
भारत के सौभाग्य-विधाता, भारत माता के आज्ञार्थी,
भारत-विजय-क्षेत्र में जाओ, प्यारे भारतीय विद्यार्थी ॥११॥

अमर राष्ट्र

छोड़ चले, ले तेरी कुटिया,
यह लुटिया-डोरी ले अपनी,
फिर वह पापड़ नहीं बेलने,
फिर वह माला पड़े न जपनी ॥१॥

यह जागृति तेरी तू ले ले,
मुझको मेरा दे दे सपना,
तेरे शीतल सिंहासन से,
सुखकर सौ युग ज्वाला तपना ॥२॥

सूली का पथ ही सीखा हूँ,
जिससे देश बचाता आया,
मैं बलि-पथ का अंगारा हूँ,
जीवन ज्वाल जगाता आया ॥३॥

एक फूंक, मेरा अभिमत है,
फूक चलूं जिससे नभ-जल-थल।
मैं तो हूँ बलि-धारा-पन्थी,
फेंक चुका कब का गंगा-जल ॥४॥

श्वेत केश? भाई होने को—
हैं ये श्वेत पुतलियां बाकी,
आया था इस घर एकाकी,
जाने दो मुझको एकाकी ॥५॥

मैं यह चला पत्थरों पर चढ़,
मेरा दिलबर वहीं मिलेगा,
फूंक जला दें सोना-चाँदी,
तभी क्रान्ति का सुमन खिलेगा ॥६॥

चट्टानें चिंघाड़ें ! हँस-हँस,
सागर गरजे मस्ताना सा,
प्रलय-राग भी अपना उसमें,
गूंथ चलें ताना-वाना सा ॥७॥

मैं पहला पत्थर मन्दिर का,
अनजाना पथ जान रहा हूँ,
गड़ा नींव में अपने कन्धों पर,
मन्दिर अनुमान रहा हूँ ॥८॥

अमर राष्ट्र, उद्दंड राष्ट्र, उन्मुक्त राष्ट्र
यह मेरी बोली,
यह 'सुधार' 'समझौतों' वाली,
मुझको भाती नहीं ठठोली ॥९॥

मैं न सहूँगा—मुकुट और,
सिंहासन ने वह मूंछ मरोरी,
जाने दो सिर लेकर मुझको,
ले सँभाल यह लोटा-डोरी ॥१०॥

१६

सुभद्राकुमारि चौहान

बचपन

बार-बार आती है मुझको, मधुर याद बचपन तेरी।
गया, ले गया तू जीवन की, सबसे मस्त खुशी मेरी॥
चिन्तारहित खेलना-खाना, वह फिरना निर्भय स्वच्छन्द।
कैसे भूला जा सकता है, बचपन का अतुलित आनन्द॥
ऊँच-नीच का ज्ञान नहीं था, छुआछूत किसने जानी।
बनी हुई थी, अहा झोंपड़ी, और चीथड़ों में रानी॥
रोना और मचल जाना भी, क्या आनन्द दिखाते थे।
बड़े-बड़े मोती से आँसू, जयमाला पहनाते थे॥
दादा ने चन्दा दिखलाया, नेत्र-नीर द्रुम दमक उठे।
धुली हुई मुस्कान देखकर, सबके चेहरे चमक उठे॥
आ जा बचपन एक बार फिर, दे-दे अपनी निर्मल शान्ति।
व्याकुल व्यथा मिटाने वाली, वह अपनी प्राकृत विश्रांति॥
वह भोली-सी मधुर सरलता, वह प्यारा जीवन निष्पाप।
क्या फिर आकर मिटा सकेगा, तू मेरे मन का सन्ताप॥
मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन-वन-सी फूल उठी वह, छोटी-सी कुटिया मेरी॥
'माँ-ओ' कहकर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी।
कुछ मुँह में कुछ लिये हाथ में, मुझे खिलाने आई थी॥

पुलक रहे थे अंग, दृगों में कौतूहल था छलक रहा।
मुँह पर थी आह्लाद-लालिमा, विजय-गर्व था झलक रहा॥
मैंने पूछा, 'यह क्या लाई', बोल उठी वह 'माँ काओ'।
हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से, मैंने कहा 'तुम्हीं खाओ'॥
पाया बचपन मैंने फिर से, बचपन बेटी बन आया।
उसकी मञ्जुल मूर्ति देखकर मुझमें नव-जीवन आया॥
मैं भी उसके साथ खेलती, खाती हूँ, तुतलाती हूँ।
मिलकर उसके साथ स्वयं, मैं भी बच्ची बन जाती हूँ॥

वीरों का वसन्त

वीरों का कैसा हो वसन्त?
आ रही हिमाचल से पुकार,
है उदधि गरजता बार-बार,
प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग्-दिगन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त?
फूली सरसों ने दिया रङ्ग,
मधु लेकर आ पहुँचा अनङ्ग,
वधु-वसुधा पुलकित अङ्ग-अङ्ग,
हैं वीर वेश में किन्तु कन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त?
भर रही कोकिला इधर तान,
मारू बाजे पर उधर गान,
है रंग और रण का विधान,
मिलने आए हैं आदि-अन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त?

कह दे अतीत अब मौन त्याग,
लंके ! तुझ में क्यों लगी आग,
ए कुरुक्षेत्र ! अब जाग, जाग,
बतला अपने अनुभव अनन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

हल्दी-घाटी के शिला-खण्ड,
ए दुर्ग ! सिंह-गढ़ के प्रचण्ड,
राणा ताना का कर घमण्ड,
दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

भूषण अथवा कवि चन्द नहीं,
बिजली भर दे वह छन्द नहीं,
है कलम बँधी स्वच्छन्द नहीं,
फिर हमें बतावे कौन ? हन्त !
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

झाँसी की रानी

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन् सत्तावन में,
वह तलवार पुरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—

खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

कानपूर के नाना की, मुँहबोली बहन 'छबीली' थी,
लक्ष्मीबाई नाम, पिता की वह सन्तान अकेली थी,
नाना के सँग पढ़ती थी वह, नाना के संग खेली थी,
बरछी ढाल, कृपाण कटारी उसकी यही सहेली थी,
वीर शिवाजी की गाथाएँ
उसको याद जबानी थीं,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयम् वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार,
नकली युद्ध-व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना ये थे उसके प्रिय खिलवार,
महाराष्ट्रकुल देवी उसकी
भी आराध्य भवानी थी
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई झाँसी में,
व्याह हुआ रानी बन आई लक्ष्मीबाई झाँसी में,
राजमहल में बजी बधाई खुशियाँ छाई झाँसी में,
सुभट बुन्देलों की विरुदावलि—सी वह आई झाँसी में,

चित्रा ने अर्जुन को पाया,
शिव से मिली भवानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

उदित हुआ सौभाग्य, मुदित महलों में उजियाली छाई,
किन्तु काल-गति चुपके-चुपके काली घटा घेर लाई,
तीर चलाने वाले कर में उसे चूड़ियाँ कब भाईं!
रानी विधवा हुई, हाय! विधि को भी नहीं दया आई।

निःसन्तान मरे राजा जी
रानी शोक-समानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

बुझा दीप झाँसी का तब डलहौजी मन में हरषाया,
राज्य हड़प करने का उसने यह अच्छा अवसर पाया,
फौरन फौज भेज दुर्ग पर अपना झंडा फहराया,
लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिश राज्य झाँसी आया,

अश्रुपूर्ण रानी ने देखा
झाँसी हुई बिरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

अनुनय विनय नहीं सुनती है, विकट शासकों की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था जब यह भारत आया,
डलहौज़ी ने पैर पसारे अब तो पलट गई काया,
राजाओं नव्वाबों को भी उसने पैरों ठुकराया,

रानी दासी बनी, और यह
दासी अब महारानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

छिनी राजधानी देहली की, लखनऊ छीना बातों-बात,
कैद पेशवा था बिठूर में, हुआ नागपुर का भी घात,
उदैपूर, तंजोर, सतारा, करनाटक की कौन बिसात ?
जबकि सिन्ध, पंजाब ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्र-निपात,

बंगाले मद्रास आदि की
भी तो वही कहानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

रानी रोईं रनिवासों में, बेगम गम से थीं बेजार,
उनके गहने कपड़े बिकते थे कलकत्ते के बाजार,
सरे-आम नीलाम छापते थे अंग्रेजों के अखबार,
'नागपुर के जेवर ले लो' 'लखनऊ के लो नौलख हार'

यों परदे की इज्जत परदेशी
के हाथ बिकानी थी,

बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

कुटियों में थी विषम वेदना, महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरखों का अभिमान,
नाना धुन्धू पन्त पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहन छबीली ने रण-चंडी का कर दिया प्रकट आह्वान।
हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हें तो
सोई ज्योति जगानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

महलों ने दी आग, झोंपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतन्त्रता की चिनगारी अन्तरतम से आई थी,
झाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ लपटें छाई थीं,
मेरठ, कानपुर, पटना ने भारी धूम मचाई थी,
जबलपूर कोल्हापुर में भी
कुछ हलचल उकसानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

इस स्वतन्त्रता महायज्ञ में कई वीरवर आये काम,
नाना धुन्धू पन्त, ताँतिया, चतुर अजीमुल्ला सरनाम,

अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुँवरसिंह सैनिक अभिमान,
भारत के इतिहास-गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम,
लेकिन आज जुर्म कहलाती,
उनकी जो कुरबानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

इनकी गाथा छोड़, चलें हम झाँसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में,
लेफ्टिनेंट वौकर आ पहुँचा, आगे बढ़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींच ली, हुआ द्वन्द्व असमानों में,
जख्मी होकर वौकर भागा,
उसे अजब हैरानी थी;
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

रानी बढ़ी कालपी आई, कर सौ मील निरन्तर पार,
घोड़ा थककर गिरा भूमि पर, गया स्वर्ग तत्काल सिधार,
यमुना तट पर अंग्रेजों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चल दी, किया ग्वालियर पर अधिकार,
अंग्रेजों के मित्र सिन्धिया
ने छोड़ी रजधानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—

खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।
विजय मिली, पर अंग्रेजों की फिर सेना घिर आई थी,
अब के जनरल स्मिथ सम्मुख था, उसने मुँह की खाई थी,
राना और मुन्दरा सखियाँ रानी के सँग आई थीं,
युद्ध-क्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी,
पर पीछे ह्यू रोज आ गया,
हाय! घिरी अब रानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।
तो भी रानी मार-काट कर चलती बनी सैन्य के पार,
किन्तु सामने नाला आया, था यह संकट विषम अपार,
घोड़ा अड़ा, नया घोड़ा था, इतने में आ गये सवार,
रानी एक शत्रु बहुतेरे, होने लगे वार-पर-वार,
घायल होकर गिरी सिंहनी
उसे वीरगति पानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।
रानी गई सिधार, चिता उसकी अब दिव्य सवारी थी,
मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी,
अभी उम्र कुल तेइस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी,
हमको जीवित करने आई बन स्वतन्त्रता-नारी थी,

दिखा गई पथ, सिखा गई
हमको जो सीख सिखानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

जाओ रानी! याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतन्त्रता अविनाशी,
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी,
हो मदमाती विजय, मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी,
तेरा स्मारक तू ही होगी,
तू खुद अमिट निशानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

१७

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

आओ, नव निर्माण करें !

आओ, हिय में भरें उमंगें, आओ नव निर्माण करें;
आज उछालें नई तरंगें, जग में नूतन प्राण भरें

(१)

इस सामाजिक गलित-कुष्ठ का ध्वंस करें, विध्वंस करें,
आओ, इस अभिशाप-पाप को हम सब मिल निर्वंश करें;
फैले हैं कीटाणु सड़न के, हम इनके सब अंश हरें
जग में आज नये भेषज का हम सब नवल विधान करें !
आओ, हिय में भरें, उमंगें, आओ नव निर्माण करें !

(२)

मानवता का यह विराट् तन पूति-गन्ध-संयुक्त हुआ
कोढ़ी है यह नर-नारायण, सब देवत्व विलुप्त हुआ;
सड़ा हृदय, मस्तिष्क सड़ चला, अंग-अंग से कोढ़ चुआ
आओ, हम इस मानवता को नूतन जीवन-दान करें !
आज उछालें नई तरंगें जग में नूतन प्राण भरें !

(३)

किये घाव किसने कि सड़े हैं जो इस मानव के तन पर ?
किसके हैं ये व्रण कि हुए हैं अंकित मानव के मन पर;
इसका तो दायित्व-भार है अरे हमीं सब जन-गन पर

हमीं पातकी हैं ! किस-किसका हम गुण-दोष बखान करें !
छोड़ो ये सब दोष कथाएँ, आओ नव निर्माण करें !

(४)

जिसमें मानव की छवि थी वह चित्राधार बना हिय-भ्रम
हाय वही आधेय हो गया, जो था इक आधार स्वयं;
सामाजिकता की चौखट ही बनी आदरास्पदा परम
आओ, तोड़ें यह चौखट, हम नवल चित्र निर्माण करें !
आओ हिय में भरें उमंगें, आओ नव निर्माण करें !

(५)

आज महान् कर्म-आमन्त्रण हमें मिला है अम्बर से
धनुप-यज्ञ का आज निमन्त्रण आया विजय-स्वयंवर से;
करके मुक्त प्राण, मन, तन, सब, सदियों के आडंबर से
चलो, चलें हम विजय-वरण हित, नूतन शर-संधान करें !
आओ, हिय में भरें उमंगें, जग में नूतन प्राण भरें !

(६)

प्यासे, धुँधले मट-मैले से, दृग में भर लें विजय-छटा
और गलित गातों में भर लें, विद्युत-शक्ति निपट विकटा;
क्षण में ही विलीन होगी यह अन्धकार घनघोर घटा
चलो, चलें हम अदम उछाही, तुमुल युद्ध की तान भरें !
आज उछालें नई तरंगे, आओ नव निर्माण करें !

(७)

यह देखो, योगीश्वर गिरिवर, अटल हिमाचल तुङ्ग-शिखर
यह, देखो, उसकी गोदी में, गंग खेलती बिखर-बिखर;
गंगा-यमुना-सरयू-सतलज, व्यास चली कल-कल ध्वनि कर
आओ, अवलोकें यह शोभा, आओ हृदय उड़ान भरें !
आज उछालें नई तरंगें, आओ नव निर्माण करें।

(८)

यह अपना पुराण विन्ध्याचल, ये सब औघट घाट निरे
भारत के पूरब-पश्चिम के ये दो भीम कपाट निरे;
यह सतपुड़ा और ये नागा, खसिया शैल विराट निरे
कहते हैं आओ हम सब मिल, ऊँचा विजय निशान करें!
आज उछालें नई तरंगें, आओ नव निर्माण करें!

(९)

ब्रह्मपुत्र दामोदर नद यह, यह कृष्णा, यह कावेरी
आज यह सभी हम से कहते, लगा रहे हो क्यों देरी?
जीवन की सुलगा दो ज्वाला, कर दो भस्म कलुष ढेरी
सुनकर यह सन्देश, भीतियाँ, मन से क्यों न प्रयाण करें!
आओ, हिय में भरें उमंगें, आओ नव निर्वाण करें!

हिन्दुस्थान हमारा है!

कोटि-कोटि कंठों से निकली, आज यही स्वर-धारा है!
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है!
जिस दिन सबसे पहले जागे नव सिरजन के स्वप्न घने,
जिस दिन देश-काल के दो-दो विस्तृत विमल वितान तने,
जिस दिन नभ में तारे छिटके जिस दिन सूरज-चाँद बने,
तब से है यह देश हमारा यह अभिमान हमारा है!
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है!
जिस क्षण से जड़ रज-कण गतिमय होकर जंगम कहलाये,
जब कि हँसी प्रथमा ऊषा वह जब कि कमल-दल मुसकाये,
जब मिट्टी में चेतन चमका प्राणों के झोंके आये,
है तब से यह देश हमारा यह मन-प्राण हमारा है!
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है!

यहाँ प्रथम मानव ने खोले निंदियारे लोचन अपने,
इसी नभ तले उसने देखे शत-शत नवल सृजन सपने,
यहाँ उठे 'स्वाहा' के स्वर औ' यहाँ 'स्वधा' के मन्त्र बने,
ऐसा प्यारा देश पुरातन ज्ञान-निधान हमारा है!
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है!
विन्ध्य, सतपुड़ा, नागा, खसिया ये दो औघट-घाट महा,
भारत के पूरब-पश्चिम के, ये दो भीम कपाट महा,
तुंग शिखर चिर अटल-हिमालय, है पर्वत सम्राट् यहाँ,
यह गिरिवर बन गया युगों से विजय-निशान हमारा है।
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है!
क्या गणना है कितनी लम्बी हम सबकी इतिहास-लड़ी,
हमें गर्व है कि है बहुत ही गहरे अपनी नींव पड़ी,
हमने बहुत बार सिरजी हैं कई क्रांतियाँ बड़ी-बड़ी,
इतिहासों ने किया सदा ही अतिशय मान हमारा है!
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है!
है आसन्नभूत अति उज्ज्वल है अतीत गौरवशाली,
औ' छिटकी है वर्तमान पर बलि के शोणित की लाली,
नव ऊषा-सी विहँस रही है विजय हमारी मतवाली,
हम मानव को मुक्त करेंगे यही विधान हमारा है!
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है!

विप्लव-गायन

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए,
एक हिलोर इधर से आए एक हिलोर उधर से आए,
प्राणों के लाले पड़ जाएँ, त्राहि-त्राहि रव नभ में छाए,
नाश और सत्यानाशों का धुँआधार जग में छा जाए,

बरसे आग, जलद जल जाएँ, भस्मसात् भूधर हो जाएँ,
पाप, पुण्य सदसद्भावों की धूल उड़ उठे दाएँ-बाएँ,
नभ का वक्षस्थल फट जाए, तारे टूक-टूक हो जाएँ
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए ॥
माता की छाती का अमृतमय पय कालकूट हो जाए,
आँखों का पानी सूखे वे शोणित की घूँटें हो जाए,
एक ओर कायरता काँपे, गतानुगति विगलित हो जाए,
अन्धे मूढ़ विचारों की वह अचल शिला विचलित हो जाए,
और दूसरी ओर कँपा देने वाला गर्जन उठ धाए,
अन्तरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मँडराए,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए ॥
नियम और उपनियमों के ये बन्धन टूक-टूक हो जाएँ,
विश्वम्भर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जाएँ,
शांति-दण्ड टूटे—उस महारुद्र का सिंहासन थर्राए,
उसकी श्वासोच्छ्वासदाहिका जग के प्रांगण में घहराए,
नाश ! नाश !! हाँ महानाश !!! की प्रलयंकरी आँख खुल जाए,
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए !!
सावधान ! मेरी वीणा में चिनगारियाँ आन बैठी हैं,
टूटी हैं मिजरावें, युगलाँगुलियाँ ये मेरी ऐंठी हैं,
कण्ठ रुका है महानाश का मारक गीत रुद्ध होता है,
आग लगेगी क्षण हृत्तल में अब क्षुब्ध युद्ध होता है,
झाड़ और झंखाड़ दग्ध हैं इस ज्वलन्त गायन के स्वर से,
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान है निकली मेरे अन्तरतर से !!
कण-कण में है व्याप्त वही स्वर रोम-रोम गाता है वह ध्वनि,
वही तान गाती रहती है कालकूट फणि की चिंतामणि।
जीवन ज्योति लुप्त है अहा ! सुप्त हैं संरक्षण की घड़ियाँ,
लटक रही हैं प्रतिपल में इस नाशक संभक्षण की लड़ियां।

चकनाचूर करो जग को गूँजे ब्रह्माण्ड नाश के स्वर से,
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान निकली है मेरे अन्तरतर से ॥
दिल को मसल-मसल मैं मेंहदी रचवा आया हूँ यह देखो,
एक-एक अँगुली-परिचालन में नाशक ताँडव को पेखो ।
विश्वमूर्ति ! हट जाओ यह मम भीम प्रहार सहे न सहेगा ।
टुकड़े-टुकड़े हो जाओगी, नाम मात्र अवशेष रहेगा ।
आज देख आया हूँ जीवन के सब राज समझ आया हूँ,
भ्रू विलास में महानाश के पोषक सूत्र परख आया हूँ ।
जीवन गीत भुला दो, कण्ठ मिला दो मृत्यु गीत के स्वर से,
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान है निकली मेरे अन्तरतर से ॥
बन-बन कर मिट गए अनेकों मेरे मधुमय स्वप्न रँगीले
भर-भर कर फिर-फिर सूखे हैं मेरे लोचन गीले-गीले !
मेरा क्या कौशल ? क्या मेरी चंचल तूली ? क्या मेरे रँग ?
क्या मेरी कल्पना हंसिनी ? मेरी क्या रस-रास-रति-उमँग ?
मैं कब का रँग-रूप-चितेरा ? मैं कब विचर सका खग-कुल-सँग ?
मम स्वप्नों के चित्र स्वयं ही बने, स्वयं ही मिटे हठीले;
भर-भर कर फिर-फिर सूखे हैं, ये मेरे रँग-पात्र रँगीले !
मेरे स्वप्न विलीन हुए हैं, किन्तु, शेष है परछाँई-सी,
मिटने को तो मिटे, किन्तु वे छोड़ गए हैं इक झाँई-सी;
उस झिलमिल-सी स्मृति-रेखा से हैं ये आँखें अकुलाई-सी;
उसी रेख से बन उठते हैं फिर-फिर नवल चित्र चमकीले;
बन-बन कर मिट गए अनेकों मेरे सपने गीले-गीले !
कलाकार कब था मैं, प्रियतम, कब मैंने तूलिका चलाई ?
मैंने कब यत्नतः कला के मन्दिर में वत्तिका जलाई ?
यों ही कभी काँप उट्ठी है मेरी अँगुली और कलाई;
यों ही कभी हुए हैं कुछ-कुछ रसमय, कुछ पाहन अरसीले;
बन-बन कर मिट गए अनेकों मेरे मधुमय स्वप्न रँगीले

मैंने कब सजीवता फूँकी जग के कठिन-शैल पाहन में ?
मैं कर पाया प्राण-स्फुरण कब अपने अभिव्यंजन-वाहन में ?
मुझे कब मिले सुन्दर मुक्ता भावार्णव के अवगाहन में ?
यदा कदा हैं मिले मुझे तो तुम जैसे कुछ अथिति लजीले !
यों ही बन-बन कर बिगड़े हैं मेरे मधुमय स्वप्न रँगीले !

१८

रामनरेश त्रिपाठी

वह देश कौन-सा है ?

मन मोहिनी प्रकृति की जो गोद में बसा है।
सुख स्वर्ग-सा जहाँ है, वह देश कौन-सा है ?
जिसका चरण निरन्तर रत्नेश धो रहा है।
जिसका मुकुट हिमालय, वह देश कौन-सा है ?
नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही हैं।
सींचा हुआ सलोना, वह देश कौन-सा है ?
जिसके बड़े रसीले फल, कन्द, नाज, मेवे।
सब अंग में सजे हैं, वह देश कौन-सा है ?
जिसमें सुगन्ध वाले सुन्दर प्रसून प्यारे।
दिन-रात हँस रहे हैं, वह देश कौन-सा है ?
मैदान, गिरि, वनों में हरियालियाँ लहकतीं।
आनन्दमय जहाँ हैं, वह देश कौन-सा है ?
जिसकी अनन्त धन से धरती भरी पड़ी है।
संसार का शिरोमणि, वह देश कौन-सा है ?
सबसे प्रथम जगत् में जो सभ्य था यशस्वी।
जगदीश का दुलारा, वह देश कौन-सा है ?
पृथ्वी-निवासियों को जिसने प्रथम जगाया—
शिक्षित किया, सुधारा, वह देश कौन-सा है ?

जिसमें हुए अलौकिक तत्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी।
गौतम, कपिल, पतंजलि वह देश कौन-सा है?
छोड़ा स्वराज तृणवत् आदेश से पिता के।
वह राम थे जहाँ पर, वह देश कौन-सा है?
निःस्वार्थ शुद्ध प्रेमी भाई, भले जहाँ थे।
लक्ष्मण-भरत सरीखे, वह देश कौन-सा है?
देवी पतिव्रता श्री सीता जहाँ हुई थीं।
माता-पिता जगत् का, वह देश कौन-सा है?
आदर्श नर जहाँ पर, थे बाल ब्रह्मचारी।
हनुमान, भीष्म, शंकर, वह देश कौन-सा है?
विद्वान्, वीर, योगी, गुरु राजनीतिकों के।
श्रीकृष्ण थे जहां पर, वह देश कौन-सा है?
विजयी बली जहाँ के बे-जोड़ सूरमा थे।
गुरु द्रोण, भीम, अर्जुन, वह देश कौन-सा है?
जिसमें दधीचि, दानी हरिचन्द, कर्ण-से थे।
सब लोक का हितैषी, वह देश कौन-सा है?
वाल्मीकि, व्यास ऐसे जिसमें महान् कवि थे।
श्री कालिदास वाला वह, देश कौन-सा है?
निष्पक्ष न्यायकारी जन जो पढ़े-लिखे हैं।
वे सब बता सकेंगे, वह देश कौन-सा है?
हैं कोटि-कोटि भाई सेवक सपूत जिसके।
भारत सिवाय दूजा, वह देश कौन-सा है?

ग्राम-शोभा

छूता हुआ गाँव की सीमा अति निर्मल जल वाला।
बहता है अविराम निरंतर कल-कल स्वर से नाला॥

अनति दूर पर हरियाली से लदी खड़ी गिरि-माला।
किंतु नहीं इससे हृदयों में है आनन्द-उजाला॥
कहीं श्याम चट्टान, कहीं दर्पण-सा उज्ज्वल सर है।
कहीं हरे तृण खेत, कहीं गिरि-स्रोत प्रवाह प्रखर है॥
कहीं धार के पास शिला पर, बैठ लोग क्षण भर को।
पा सकते हैं शांति, मिटा सकते हैं जी के ज्वर को॥
बार-बार वक-पंक्ति-गमन से, उज्ज्वल फूलों वाली।
मेघ-पुष्प-वर्षा से धूमिल घटा क्षितिज पर काली॥
लहराती दृग की सीमा तक, धानों की हरियाली।
वारिज-नयन गगन-छवि-दर्शक सर की छटा निराली॥
कदली बन से हरी धरा को देख न आँख अघाती।
क्यों यह नहीं गाँव वालों के जी की जलन मिटाती॥
गेहूँ, चने, मटर, जौ के हैं, खेत खड़े लहराते।
क्या कारण है, जो ये जन का कुछ न विषाद मिटाते॥
निम्ब, कदम्ब, अम्ब, इमली की श्याम निरातप छाया।
सेवन कर फिर लोक-शोक का स्मरण न रखती काया॥
बैठ खेत की विशद मेंड़ पर कोमल अमल पवन में।
आँख मूँद श्रम का अनुभव करता किसान है मन में॥
विमलोदक पुष्कर में विकसे चित्र विचित्र कुसुम हैं।
खड़े चतुर्दिक शान्त भाव से लतिकालिङ्गित द्रुम हैं॥
देख सलिल-दर्पण में शोभा वे फूले न समाते।
दे प्रसून उपहार सरोवर को निज हर्ष जनाते॥
सुन्दर सर है, लहर मनोरथ-सी उठकर मिट जाती।
तट पर है कदम्ब की विस्तृत छाया सुखद सुहाती॥
लटक रहे हैं धवल सुगन्धित कन्दुक से फल फूले।
पी पी मधु मकरंद मोद में गूँज रहे अलि भूले॥

संध्या समय चतुर्दिक से बहु हर्ष-निनाद सुनाते ।
विविध रूप रंगों के पक्षी झुंड-झुंड मिल आते ॥
बैठ पल्लवों पर सब मिलकर गान मनोहर गाते ।
अद्‌भुत वाद्य यन्त्र पादप को हैं प्रति दिवस बनाते ॥
अति निस्तब्ध निशीथ तमावृत मौन प्रकृति-कुल सारे ।
शान्ति गगन में झिलमिल करते हैं नित नीरव तारे ॥
चारों ओर तुषार-धवल पर्वत चुपचाप खड़ा है ।
प्रकृति-मुकुर-सा भव्य सरोवर उसके मध्य जड़ा है ॥
तट पर स्वच्छ शिला सुन्दर है, बैठ यहाँ यदि जाते ।
तो क्या क्षण भर भी न किसी के दृग, मन, प्राण जुड़ाते ॥
एक एक तृण बतलाता है जगदीश्वर की सत्ता ।
व्यापक है लघु में लघु से भी उसकी विपुल महत्ता ॥

अन्वेषण

मैं ढूँढता तुझे था जब कुञ्ज और वन में ।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में ॥
तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था ।
मैं था तुझे बुलाता संगीत में, भजन में ॥
मेरे लिये खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू ।
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में ॥
बन कर किसी के आँसू मेरे लिये बहा तू ।
मैं देखता तुझे था माशूक के बदन में ॥
दुख से रुला-रुला कर तूने मुझे चिताया ।
मैं मस्त हो रहा था तब हाय ! अंजुमन में !
बाजे बजा-बजा कर मैं था तुझे रिझाता ।
जब तू लगा हुआ था पतितों के संगठन में ॥

मैं था विरक्त तुझसे जग की अनित्यता पर।
उत्थान भर रहा था तब तू किसी पतन में॥
तू बीच में खड़ा था बेबस गिरे हुओं के।
मैं स्वर्ग देखता था झुकता कहाँ चरन में॥
तूने दिये अनेकों अवसर न मिल सका मैं।
तू कर्म में मगन था, मैं व्यस्त था कथन में॥
हरिचन्द और ध्रुव ने कुछ और ही बताया।
मैं तो समझ रहा था तेरा प्रताप धन में॥
तेरा पता सिकन्दर को मैं समझ रहा था।
पर तू बसा हुआ था फरहाद कोहकन में॥
क्रीसस की हाय में था करता विनोद तू ही।
तू ही विहँस रहा था महमूद के रुदन में॥
प्रह्लाद जानता था तेरा सही ठिकाना।
तू ही मचल रहा था मंसूर की दहन में॥
आखिर चमक पड़ा तू गांधी की हड्डियों में।
मैं तो समझ रहा था सुहराब-पील-तन में॥
कैसे तुझे मिलूँगा जब भेद इस कदर है।
हैरान हो के भगवन आया हूँ मैं सरन में॥
तू रूप है किरन में, सौन्दर्य है सुमन में।
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में॥
तू ज्ञान हिन्दुओं में, ईमान मुसलिमों में।
विश्वास क्रिश्चियन में, तू सत्य है सुजन में॥
हे दीनबन्धु ! ऐसी प्रतिभा प्रदान कर तू।
देखूँ तुझे दृगों में, मन में तथा वचन में।
कठिनाइयों, दुखों का इतिहास ही सुयश है।
मुझको समर्थ कर तू, बस कष्ट के सहन में॥

दुख में न हार मानूँ, सुख में तुझे न भूलूँ ।
ऐसा प्रभाव भर दे, मेरे अधीर मन में ॥

देश-सेवा

(१)

एक समय स्वाधीन देश को
समझ शत्रु-भय-रहित सुरक्षित,
लोग स्वर्ग-सुख भोग रहे थे
शांति सहित, निर्विघ्न अशङ्कित ।
सुधा-मधुर रसमय काव्यों को
पढ़ सुन समझ और अनुभव कर,
अभिनय कर, विनोद-विनिमय कर
आनन्दित थे सब नारी नर ॥

(२)

पारस्परिक सहानुभूतिमय
सकल मनुज नीरुज निरुपद्रव,
हाट-बाट घर-घर में प्रतिदिन
करते थे संगीत महोत्सव ।
युवक-युवतियों के कलोल से
गूँजा रहता था घर उपवन,
नित्य नवल कामना-निरत थे
विविध विलास-युक्त उनके मन ॥

(३)

यह सुख देख द्वेषवश अथवा
धनलिप्सावश बल संचय कर,

एक शत्रु चतुरंग चमू ले
औचक आ पहुँचा सीमा पर।
देशाधिप ने तुमुल युद्ध कर
रोका वहु संख्यक ले सैनिक,
पर अरि की दुर्जेय अनी से
हार गया नृप नहीं सका टिक॥

(४)

विद्युत वेगवन्त वैरी ने
पाकर बाधा रहित सुअवसर,
कितने ही पुर नगर ग्राम घर
धान्यागार लिए अधिकृत कर।
पहुँचा दी सत्वर स्वदेश में
यह घोषणा नृपति ने घर घर,
अपने देश मान धन जन की
रक्षा करे प्रजा सब मिलकर॥

(५)

मैं नितांत असमर्थ हुआ हूँ
कोई मुझ पर रहे न निर्भर,
अपनी यह असहाय अवस्था
चकित हो गये लोग श्रवण कर।
जैसे थे वे सुखाभिलाषी
वैसे ही थे सावधान नित,
नीति-निपुण मन्त्रणा-कुशल थे
वे रहस्य-रक्षक इन्द्रिय-जित॥

(६)

वे थे नीति-धर्म के रक्षक
जगज्जयी पुरुषों के वंशज,

पृथ्वी भर के नृप होते थे
धन्य प्राप्त कर जिनकी पद रज।
सत्य शौर्य विश्वास न्याय के
एक मात्र आधार धरा पर,
वे ही थे; उनका जीवन था
जग के निविड़ विपिन में दिनकर ॥

(७)

वे न जानते थे भूतल पर
जीवित रहना पराधीन बन,
न्याय और स्वातन्त्र्य जगत में
उनके थे दो ही जीवन-धन।
सुन नृप की घोषणा शत्रु की
प्रबल शक्ति का पाकर परिचय,
किया उन्होंने शीघ्र शत्रु को
उचित दण्ड देने का निश्चय ॥

(८)

जय से दृढ़ विश्वास-युक्त थे
दीप्तिमान जिनके मुख-मण्डल,
पर्वत को भी खण्ड-खण्ड कर
रजकण कर देने को चंचल।
कड़क रहे थे अति प्रचण्ड भुज—
दण्ड शत्रु-मर्दन को विह्वल,
ग्राम ग्राम से निकल निकल कर
ऐसे युवक चले दल के दल ॥

(९)

अपने शयनागार बन्द कर
दिये नवोढ़ाओं ने तत्क्षण,

बाँध दिये पतियों की कटि में
असि, कलाइयों में रण कंकण।
माताओं ने विजय-तिलक कर
छिड़के थे जिन पर पवित्र जल,
ग्राम ग्राम से निकल-निकल कर
ऐसे युवक चले दल के दल॥

(१०)

अरि मर्दन के मनोभाव थे
जिनकी मुख-आकृति में लक्षित,
जिनके हृदय पूर्व पुरुषों की
वीर कथाओं से थे रक्षित।
जिनमें शारीरिक बल से था
कहीं अधिक उद्दाम मनोबल,
ग्राम ग्राम से निकल-निकल कर
ऐसे युवक चले दल के दल॥

(११)

जिनकी नस-नस में विद्युत थी
आँखों में था क्रोध प्रज्वलित,
छाती में उत्साह भरा था
वाणी में था प्राण प्रवाहित।
मातृ-भूमि के लिए हृदय में
जिनके भरी भक्ति थी अविरल
ग्राम ग्राम से निकल-निकल कर
ऐसे युवक चले दल के दल॥

(१२)

माँ ने कहा—दूध की मेरे
लज्जा रखना रण में हे सुत,

स्त्री ने कहा—लौटना घर को
आर्य-पुत्र ! तुम विजय श्री-युत।
इन वचनों से गूँज रहे थे
जिनके श्रवण और अन्तस्तल,
ग्राम-ग्राम से निकल-निकल कर
ऐसे युवक चले दल के दल॥

(१३)

रहता था उत्साह प्रवाहित
गाँवों में राहों पर दिन भर,
घर से निकल खड़ी रहती थीं
माताएँ भोजन जल लेकर।
सैनिक युवकों को रणवर्ती
निज पुत्रों के तुल्य मानकर,
खिला पिला कर सुख पाती थीं,
प्रेम-सहित दृग मूँद ध्यान कर॥

(१४)

बहनें कहती थीं—हे भाई
वैरी का अभिमान चूर्ण कर,
विजयी योद्धा के बानक में
इसी राह होकर जाना घर।
हम गायेंगी गीत विजय के
फूल और लाजा बरसा कर,
बहनों को आनन्दित करना
हर्ष हमारा सुना सुना कर॥

(१५)

बहुएँ भूख-प्यास बिसरा कर
पथ पर निर्निमेष दृग देकर,

देख सैनिकों के सजधज निज-
पतियों की छवि दृग में लेकर।
पथ की ओर खोल वातायन
वार-वार चुपचाप आह भर,
किसी कल्पना में वेसुध-सी
वहीं खड़ी रहती थीं दिन भर॥

(१६)

युद्ध जीत कर वीर वेष में
आएँगे मेरे प्राणेश्वर,
पहनाऊँगी यह जय-माला
इसी भावना को उर में धर।
प्रात:काल नित्य उठ करके
उपवन से नव कुसुम चयन कर,
हार गूँथ कर वे रखती थीं
प्रेम-वारि से पूर्ण नयन कर॥

(१७)

गाँव-गाँव में चौराहों पर
प्रति दिन सन्ध्या को नारी-नर,
एकत्रित हो युद्ध-भूमि के
अति रोचक वृत्तांत श्रवण कर।
हो जाते थे हर्ष-विमोहित
रोमाञ्चित गर्वित आनन्दित,
कभी-कभी चिन्तित आन्दोलित
उत्तेजित विक्षोभ-विकम्पित॥

(१८)

करता था जब समराङ्गण में
कोई योद्धा प्राप्त वीर-गति,

उसके जननी-जनक गाँव में
होते थे तव सम्मानित अति।
उन्हें राष्ट्र-रक्षक कह कर सब
सादर करते थे मस्तक नत,
क्षण में हो जाता था उनका
पुत्र-वियोग गर्व में परिणत॥

(१६)

होता था जब समर-भूमि में
कोई सैनिक लड़कर आहत,
उसकी वीर-प्रसू के अद्भुत
हो जाते थे भाव मनोगत।
अपनी कोख पवित्र मान कर
वह कहती होकर आनंदित,
वीर कर्म का मेरे सुत के
तन पर है स्मृति-चिह्न अलंकृत॥

१९

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

जय !

भारति, जय, विजय करे !
कनक-शस्य-कमलधरे

लङ्का पदतल शतदल
गर्जितोर्मि सागर-जल,
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु-अर्थ-भरे।
तरु-तृण-वन-लता वसन,
अञ्चल में खचित सुमन,
गङ्गा ज्योतिर्जल-कण
धवल-धार हार गले।
मुकुट शुभ्र हिम-तुषार,
प्राण प्रणव ओङ्कार,
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शतमुख शतरव मुखरे ।

जागो फिर एक बार

जागो फिर एक बार !
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें

अरुण पंख तरुण किरण
खड़ी खोलती है द्वार
जागो फिर एक वार !
आँखें अलियों सी
किसी मधु की गलियों में फँसीं,
बन्द कर पाँखें
पी रही हैं मधु मौन
या सोई कमल कोरकों में ?
बन्द हो रहा गुंजार
जागो फिर एक वार !
अस्ताचल ढले रवि,
शशि छवि विभावरी में
चित्रित हुई है देख
यामिनी गन्धा जगी,
एक टक चकोर दर्शन प्रिय,
आशाओं भरी मौन भाषा बहुभावमयी
घेर रहा चन्द्र को चाव से,
शिशिर भार व्याकुल कुल
खुले फूल झुके हुए,
आया कलियों में मधुर
मद उर यौवन उभार
जागो फिर एक वार !
पिउ रव पपीहे प्रिय बोल रहे,
सेज पर विरह विदग्धा वधू
याद कर बीती बातें, रातें मन मिलन की
मूँद रही पलकें चारु,

नयन जल ढल गए,
लघुतर कर व्यथा भार
जागो फिर एक बार !
सहृदय समीर जैसे
पोंछो प्रिय, नयन नीर
शयन शिथिल बाहें
भर स्वप्निल आवेश में,
आतुर उर वसन मुक्त कर दो,
सब सुप्ति सुखोन्माद हो;
छूट छूट अलस
फैल जाने दो पीठ पर
कल्पना से कोमल
ऋजु कुटिल प्रसार कामी केश गुच्छ।
तन मन थक जायँ,
मृदु सुरभि सी समीर में
बुद्धि बुद्धि में हो लीन,
मन में मन, जी जी में,
एक अनुभव बहता रहे
उभय आत्माओं में,
कब से मैं रही पुकार
जागो फिर एक बार !
उगे अरुणाचल में रवि
आई भारती रति कवि कंठ में,
क्षण क्षण में परिवर्तित
होते रहे प्रकृति पट,
गया दिन, आई रात,
गई रात, खुला दिन,

ऐसे ही संसार के बीते दिन, पक्ष, मास,
वर्ष कितने हजार
जागो फिर एक बार !

भिक्षुक

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली को फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये,
बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दयादृष्टि पाने की ओर बढ़ाए।
भूख से सूख ओंठ जब जाते
दाता—भाग्य विधाता से क्या पाते ?
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

२०

सुमित्रानन्दन पन्त

ज्योति भारत

ज्योति-भूमि,
जय भारत देश !
ज्योति-चरण धर जहाँ सभ्यता
उतर तेजोन्मेप !
समाधिस्थ सौन्दर्य हिमालय,
श्वेत शान्ति आत्मानुभूति लय,
गंगा-जमुना जल ज्योतिर्मय !
हँसता जहाँ अशेष !
फूटे जहाँ ज्योति के निर्भर,
ज्ञान-भक्ति गीता वंशी-स्वर,
पूर्ण काम जिस चेतन रज पर,
लोटे हँस लोकेश !
रक्त-स्नात मूर्छित धरती पर,
बरसा अमृत ज्योति-स्वर्णिम कर,
दिव्य चेतना का प्लावन भर !
दो जग को आदेश !

मंगलमय

मंगलमय पूर्ण काम,
जन-मन का लो प्रणाम !

द्वेष रहित हो भू मन
शोभा स्मित जन-जीवन,
सृजन स्वप्न भरे नयन,
कर्म जनित हो विराम !

विश्व-शान्ति बने ध्येय,
श्रेय प्रथित रहे प्रेय,
लोक ऐक्य हो अजेय,
पावन जनवास, ग्राम !

शान्त नील विश्व गगन,
शान्त हरित सिन्धु गहन
शान्त नगर पर्वत वन,
जन भू हो शान्ति धाम !

छाया

कहो कौन हो दमयंती-सी तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय तुम्हें भी त्याग गया क्या अलि ! नल-सा निष्ठुर कोई
पीले पत्रों की शय्या पर तुम विरक्ति-सी मूर्छा-सी
विजन विपिन में कौन पड़ी हो विरह-मलिन दुख-विधुरा-सी ?

× × × ×

पछतावे की परछाईं-सी तुम भूपर छाई हो कौन ?
दुर्बलता-सी, अँगड़ाई-सी, अपराधी-सी, भय से मौन,
निर्जनता के मानस-पट पर बार बार भर ठंडी साँस
क्या तुम छिपकर क्रूर काल का लिखती हो अकरुण इतिहास ?

कालानिल की कुंचित गति में बार बार कम्पित होकर,
निज जीवन के मलिन पृष्ठ पर नीरव शब्दों में निर्भर,
किस रहस्यमय अभिनय की तुम सजनी ! यवनिका हो सुकुमार,
इस अभेद्य पट के भीतर है किस विचित्रता का संसार,
भग्न भावना विजन वेदना विफल लालसाओं से भर।
किस अतीत का करुण चित्र तुम खींच रही हो कोमलतर !

× × × ×

दिनकर-कुल में दिव्य जन्म पा, बढ़ कर नित तरुवर के संग,
मुरझे पत्रों की साड़ी से ढँककर अपने कोमल अङ्ग,
सदुपदेश-सुमनों से तरु के गूंथ हृदय का सुरभित हार,
पर-सेवा रत रहती हो तुम हरती नित पथ-श्रांति अपार।

× × × ×

हाँ सखि ! आओ बाँह खोल तुम लग कर गले जुड़ा लें प्राण
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में, हो जावें द्रुत अन्तर्धान।

जग-जीवन

गाता खग प्रातः उठकर—
सुन्दर, सुखमय जग-जीवन
गाता खग संध्या-तट पर—
मंगल मधुमय जग-जीवन !

कहती अपलक तारावलि
अपनी आँखों का अनुभव,
अवलोक आँख आँसू की
भर आतीं आँखें नीरव।

हँसमुख प्रसून सिखलाते
पल भर है, जो हँस पाओ

अपने उर की सौरभ से
जग का आँगन भर जाओ।

उठ-उठ लहरें कहतीं यह
हम कूल विलोक न पावें,
पर इस उमंग में बह-बह
नित आगे बढ़ती जावें।

कँप-कँप हिलोर रह जाती—रे मिलता नहीं किनारा!
बुद्बुद विलीन हो चुपके पा जाता आशय सारा।

२१

महादेवी वर्मा

मुरझाया हुआ फूल

था कली के रूप शैशव
में अहो सूखे सुमन।
हास्य करता था, खिलाती,
अङ्क में तुझको पवन ॥१॥

खिल गया जब पूर्ण तू,
मंजुल सुकोमल पुष्प बन।
लुब्ध मधु के हेतु मँडराने
लगे काले भ्रमर ॥२॥

स्निग्ध किरणें चन्द्र की,
तुमको हँसाती थीं सदा।
ओस मुक्ता-जाल से,
शृंगारती थी सर्वदा ॥३॥

वायु पंखा झल रही,
निद्रा-विवश करती तुझे।
यत्न माली का रहा,
आनन्द से भरता तुझे ॥४॥

कर रहा अठखेलियाँ,
इतरा सदा उद्यान में।

अन्त का यह दृश्य आया,
था कभी क्या ध्यान में ॥५॥
सो रहा अब तू धरा पर,
शुष्क बिखराया हुआ।
गन्ध कोमलता नहीं,
मुख मंजु मुरझाया हुआ ॥६॥
आज तुमको देखकर,
चाहक भ्रमर आता नहीं।
वृक्ष भी खोकर तुझे
हा, अश्रु बरसाता नहीं ॥७॥
जिस पवन ने अंक में,
ले प्यार था तुझको किया।
तीव्र झोंके से सुला,
उसने तुझे भू पर दिया ॥८॥
कर दिया मधु और सौरभ,
दान सारा एक दिन।
किन्तु रोता कौन है,
तेरे लिए दानी सुमन ॥९॥
मत व्यथित हो पुष्प किसको
सुख दिया संसार ने।
स्वार्थमय सबको बनाया,
है यहाँ करतार ने ॥१०॥
विश्व में हे पुष्प! तू
सबके हृदय भाता रहा।
दान कर सर्वस्व फिर भी,
हाय, हरखाता रहा ॥११॥

जब न तेरी ही दशा पर,
दुख हुआ संसार का।
कौन रोयेगा सुमन,
हमसे मनुज निस्सार को॥१२॥

पपीहा

(१)

जिसको, अनुराग सा दान दिया,
उससे कण मांग लजाता नहीं;
अपनापन भूल समाधि लगा,
यह पी का विहाग भुलाता नहीं;
नभ देख पयोधर श्याम घिरा,
मिट क्यों उसमें मिल जाता नहीं?
वह कौन सा पी है पपीहा तेरा,
जिसे बाँध हृदय में बसाता नहीं?

(२)

उसको अपना करुणा से भरा,
उर-सागर क्यों दिखलाता नहीं?
संयोग वियोग की घाटियों में,
नव नेह में बाँध झुलाता नहीं;
संताप के संचित आँसुओं से,
नहला के उसे तू धुलाता नहीं;
अपने तम-श्यामल पाहुन को,
पुतली की निशा में सुलाता नहीं।

(३)

कभी देख पतङ्ग को जो दुख से
निज, दीपशिखा को रुलाता नहीं;

मिल ले उस मीन से जो जल की,
निठुराई विलाप में गाता नहीं;
कुछ सीख चकोर से जो चुगता
अङ्गार, किसी को सुनाता नहीं;
अब सीख ले मौन का मन्त्र नया,
यह पी पी घनों को सुहाता नहीं!

दीपक जल

मधुर मधुर मेरे दीपक जल।
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल।
प्रियतम का पथ आलोकित कर।
सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल।
पुलक पुलक मेरे दीपक जल।
सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझ से ज्वाला कण;
विश्व शलभ सिर धुन कहता मैं,
हाय न जल पाया तुझ में मिल।
सिहर सिहर मेरे दीपक जल।
जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक,
जलमय सागर का उर जलता,
विद्युत ले घिरता है बादल।
विहँस विहँस मेरे दीपक जल।

द्रुम के अंग हरित कोमलतम,
ज्वाला को करते हृदयंगम,
वसुधा के जड़ अन्तर में भी,
बन्दी है तापों की हलचल।

बिखर-बिखर मेरे दीपक जल।

मेरी निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर
मैं अञ्चल की ओट किए हूँ
अपनी मृदु पलकों से अंचल।

सहज सहज मेरे दीपक जल!

सीमा ही लघुता का बन्धन,
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन
मैं दृग के अक्षय कोषों से
तुममें भरती हूँ आँसू जल;

सजल सजल मेरे दीपक जल!

तम असीम तेरा प्रकाश चिर
खेलेंगे नव खेल निरन्तर
तम के अणु अणु में विद्युत-सा
अमिट चित्र अङ्कित करता चल!

सरल सरल मेरे दीपक जल!

तू जल जल जितना होता क्षय
वह समीप आता छलनामय,
मधुर मिलन में मिल जाता तू
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल-मिल।

मदिर मदिर मेरे दीपक जल!
प्रियतम का पथ आलोकित कर।

बदली

मैं नीरभरी दुख की बदली।
स्पन्दन में चिर निस्पन्दन बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली
मेरा पग पग संगीत-भरा,
श्वासों से स्वप्न-पराग झरा,
नभ के नव रँग बुनते दुकूल,
छाया में मलय बयार पली !
मैं क्षितिज भृकुटि पर घिर धूमिल
चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज कण पर जल-कण हो बरसी
नवजीवन अंकुर बन निकली।
पथ को न मलिन करता आना
पद चिह्न न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिहरन हो अन्त खिली।
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।

एक गीत

मैं पलकों में पाल रही हूँ यह सपना सुकुमार किसी का !

जाने क्यों कहता है कोई
मैं तम की उलझन में खोई,
धूममयी वीथी वीथी में लुक छिप कर विद्युत सी रोई !
मैं कण-कण में ढाल रही, अलि, आँसू के मिस प्यार किसी का ?

रज में शूलों का मृदु चुम्बन,
नभ में मेघों का आमंत्रण;
आज प्रलय का सिंधु कर रहा मेरी कंपन का अभिनंदन।
लाया झंझा-दूत सुरभिमय साँसों का उपहार किसी का ?

पुतली ने आकाश चुराया,
उर ने विद्युत-लोक छिपाया,
अंगराग-सी है अंगों में सीमाहीन उसी की छाया।
अपने तन पर भाता है अलि, जाने क्यों शृङ्गार किसी का ?

मैं कैसे उलझूँ ! इति-अथ में,
गति मेरी है संसृति-पथ में,
बनता है इतिहास मिलन का प्यास भरे अभिसार अकथ में।
मेरे प्रति पग पर बसता जाता सूना संसार किसी का ?

२२

रामकुमार वर्मा

पतझड़

यह वही हवा हलकी गति से,
पत्ते वृक्षों से झड़े मौन।
कैसा है यह संकेत? वृक्ष की—
शोभा हर ले गया कौन?
अपने ही नत कंकाल-अंग को,
प्रश्न बनाकर वृक्ष वक्र।
है पूछ रहा नभ से, जग में—
चलता रहता क्या यही चक्र?
ये उड़े जा रहे विहग-वृन्द,
क्यों ऊँचे-नीचे बार-बार?
जब पृथिवी ही बन रही शुष्क,
तब वे कैसे कर लें विहार?
हरियाली लहरा कर सदैव,
जो मन में भरती थी हिलोर।
वह आज सिकुड़ कर बैठ गई,
है कैसा यह अभिनय कठोर?
ये सभी दिशाएँ हुईं मौन,
उनमें उड़ती है आज धूल।

सन्ध्या के रँग में सूख गए,
कैसे गुलाब के खिले फूल !
यह एक हवा की लहर वही,
गिर पड़े और दो-चार पात ।
ले रही प्रकृति संन्यास, या कि—
सन्ध्या में सोया है प्रभात ।
मेरे मन में यह उठा भाव,
यदि आज सुखों का हुआ अन्त,
तो यह पतझड़ भी कभी अन्त—
पाएगा, आएगा वसन्त ।

कामना

मैं आज बनूँगा जलद जाल ।
मेरी करुणा का वारि
सींचता रहे अवनि का अन्तराल ।।
नभ के नीरस मन में महान्
बन सरस भावना के समान
मैं पृथ्वी का उच्छ्वासपूर्ण
परिचय दूँ बन कर अश्रुमाल ।।
हा, यहाँ सदा सुख के समीप
दुख छिप कर करता है निवास ।
मैं दिखा सकूँगा हृदय चीर
रसमय उर में है चपल ज्वाल ।
अपने नव तन को बार बार
नभ में फैला दूँ मैं सहास ।

यह आत्मसमर्पण करे सदा
मेरे जग का जीवन रसाल ॥
मैं आज बनूँगा जलद जाल ॥

आत्मा की स्मृति

कवि, मेरा सूखा-सा जीवन,
रहने दो तुम सूना;
रहो दूर मेरे सुख दुख की,
स्मृतियाँ तुम मत छूना।
रंगों से मत भरो चित्र,
धुँधली रहने दो रेखा,
मेरे सूखे से थल में,
किसने गंगाजल देखा ?
गीत-विहँग क्यों उड़े, अभी है मौन अँधेरा मेरा।
हाय! न जाने कहाँ सो रहा, स्मृति-संगीत-सवेरा!
ओसों के अक्षर से अंकित,
कर दूं व्यथा-कहानी,
उसमें होगा मेरी आँखों—
के मोती का पानी।
उसे न छूना, रह जावेगी,
मेरी कथा अधूरी,
कैसे पार करूँगी फिर मैं,
हृदय - अपरिचित दूरी ?
सुख की नहीं किन्तु दुःख ही की बनी रहूँगी रानी,
मेरे मन ही में रहने दो, मेरी करुण कहानी।
अन्धकार का अम्बर पहने,
रात बिता दूं सारी;

दीप नहीं तारक-प्रकाश में,
खोजूँ स्मृति-निधि न्यारी।
ओस सदृश अवनी पर बिखरा—
कर यह यौवन सारा,
किसी किरण के हाथ समर्पित;
कर दूं जीवन प्यारा।
तब तक यह सूखा-सा जीवन रहने दो तुम सूना,
रहो दूर, मेरे सुख-दुख की, स्मृतियाँ तुम मत छूना।

तुम्हारी याद

तब मुझे तुम याद आए!
जो हृदय की बात है वह,
आँख से जब बरस जाए--
तब मुझे तुम याद आए!
जब कि लहरों के हृदय का
एक छाला फूटता है—
नील नभ से जब अचानक
एक तारा टूटता है—
वेदना को स्वर बना कर
जब विहग ने गीत गाए—
तब मुझे तुम याद आए!
तुम न आओगे कभी—
फिर भी प्रतीक्षा है तुम्हारी!
बात है भूले मिलन की
और है यह रात सारी!

मैं समाया स्वप्न में जब
स्वप्न थे मुझे में समाये—
तब मुझे तुम याद आए!
मिलन की मधु यामिनी पर
सोचने में निशि गई है,
बात जो तुमने कही थी,
आज भी लगती नई है,
यह विरह जब एक दीपक सा
जले, पर जगमगाए—
तब मुझे तुम याद आए!

ये गजरे तारों वाले

इस सोते संसार बीच जगकर सजकर रजनी-बाले!
कहाँ बेचने ले जाती हो ये गजरे तारों वाले?
मोल करेगा कौन? सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी,
मत कुम्हलाने दो सूनेपन में अपनी निधियाँ सारी।
निर्झर के निर्मल जल में ये गजरे हिला-हिला धोना;
लहर हहरकर यदि चूमें, तो किंचित् विचलित मत होना।
होने दो प्रतिबिंब विचुंबित, लहरों ही में लहराना;
'लो मेरे तारों के गजरे' निर्झर-स्वर में यह गाना।
यदि प्रभात तक कोई आकर तुमसे हाय! न मोल करे,
तो फूलों पर ओस रूप में बिखरा देना यह गजरे।

२३

हरिवंशराय 'बच्चन'

पथ की पहचान

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

पुस्तकों में है नहीं
छापी गई इसकी कहानी,
हाल इसका ज्ञात होता
है न औरों की जबानी,

अनगिनत राही गए इस
राह से, उनका पता क्या,
पर गए कुछ लोग इस पर
छोड़ पैरों की निशानी,

यह निशानी मूक होकर
भी बहुत कुछ बोलती है,
खोल इसका अर्थ, पंथी,
पंथ का अनुमान कर ले;
पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

यह बुरा है या कि अच्छा
व्यर्थ दिन इस पर बिताना,

जब असंभव छोड़ यह पथ
दूसरे पर पग बढ़ाना,

तू इसे अच्छा समझ
यात्रा सरल इससे बनेगी,
सोच मत केवल तुझे ही
यह पड़ा मन में बिठाना,

हर सफल पंथी यही
विश्वास ले इस पर पड़ा है,
तू इसी पर आज अपने
चित्त का अवधान कर ले।

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

है अनिश्चित किस जगह पर
सरित, गिरि, गह्वर मिलेंगे
है अनिश्चित किस जगह पर
बाग, वन सुन्दर मिलेंगे,

किस जगह यात्रा खतम हो
जायगी यह भी अनिश्चित,
है अनिश्चित, कब सुमन, कब
कंटकों के शर मिलेंगे,

कौन सहसा छूट जाएँगे
मिलेंगे कौन सहसा,
आ पड़े कुछ भी, रुकेगा
तू न, ऐसी आन कर ले,

पूर्व चलने के बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

कौन कहता है कि स्वप्नों
को न आने दे हृदय में,
देखते सब हैं इन्हें
अपनी उमर, अपने समय में,

और तू कर यत्न भी तो
मिल नहीं सकती सफलता;
ये उदय होते लिए कुछ
ध्येय नयनों के निलय में,

किन्तु जग के पंथ पर यदि
स्वप्न दो तो सत्य दो सौ,
स्वप्न पर ही मुग्ध मत हो,
सत्य का भी ज्ञान कर ले;

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

स्वप्न आता स्वर्ग का, दृग-
कोरकों में दीप्ति आती,
पंख लग जाते पगों को,
ललकती उन्मुक्त छाती,

रास्ते का एक काँटा
पाँव का दिल चीर देता,
रक्त की दो बूँद गिरती।
एक दुनिया डूब जाती,

आँख में हो स्वर्ग लेकिन
पाँव पृथ्वी पर टिके हों,
कंटकों की इस अनोखी
सीख का सम्मान कर ले॥

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

मिलन-यामिनी

(१)

प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो !
मैं जगत के ताप से डरता नहीं अब,
मैं समय के शाप से डरता नहीं अब,
आज कुन्तल-छाँह मुझ पर तुम किये हो !
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो !
रात मेरी, रात का शृङ्गार मेरा,
आज आधे विश्व से अभिसार मेरा,
तुम मुझे अधिकार अधरों पर दिये हो !
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो !
वह सुरा के रूप से मोहे भला क्या,
वह सुधा के स्वाद से जाये छला क्या,
जो तुम्हारे होठ का मधु विष पिये हो !
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो !
मृत-सजीवन था तुम्हारा तो परस ही,
पा गया मैं बाहु का बन्धन सरस भी,
मैं अमर अब, मत कहो केवल जिये हो !
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो !

(२)

प्रात-मुकुलित फूल-सा है प्यार मेरा !
ठीक है, मैंने कभी देखा अँधेरा,
किन्तु अब तो हो गया फिर से सवेरा,
भाग्य-किरणों ने छुआ संसार मेरा !
प्रात-मुकुलित फूल-सा है प्यार मेरा !

तप्त आँसू से कभी मुख म्लान होता,
किन्तु अब तो शीत जल में स्नान होता,
राग-रस-कण से धुला संसार मेरा !
प्रात-मुकुलित फूल-सा है प्यार मेरा !

आह से मेरी कभी थे पत्र झुलसे,
किन्तु मेरी साँस पाकर आज हुलसे,
स्नेह-सौरभ से बसा संसार मेरा !
प्रात-मुकुलित फूल-सा है प्यार मेरा !

एक दिन मुझमें हुई थी मूर्त्त जड़ता,
किन्तु बरबस आज मैं झरता, बिखरता,
है निछावर प्रेम पर संसार मेरा !
प्रात-मुकुलित फूल-सा है प्यार मेरा !

माँग रहे हैं समाधान

(१)

कब, कहाँ पाप इतने छल-बल से व्याप्त हुआ
निर्दयता से करुणा का स्रोत समाप्त हुआ
किस लोक और किस युग में किसको प्राप्त हुआ
इतनी भीषण पशुता
दानवता का प्रमाण ?

मानवता कैसे फाँक रही है राख-धूर
संस्कृति जैसे कूड़ा-कर्कट का एक घूर
सभ्यता हो गई है लज्जा से चूर-चूर
हैं छिन्न-भिन्न विक्षुब्ध
काल, जीवन, जहान !

भू माँग रही है इस घटना का समाधान,
कण माँग रहा है इस घटना का समाधान
नभ माँग रहा है इस घटना का समाधान
तृण माँग रहे हैं इस घटना का समाधान
जन माँग रहे हैं इस घटना का समाधान
मन माँग रहा है इस घटना का समाधान !

(२)

सुकरात सन्त ने पिया ज़हर का प्याला था
मीरा ने उनको चरणामृत कह ढाला था
ऋषि दयानन्द को पड़ा उसी से पाला था
हस्तियाँ उसी पैमाने की
विष पीती हैं !

हज़रत ईसा को चढ़ा दिया था सूली पर
तन था नश्वर, लेकिन आत्मा थी अविनश्वर
वह आज किये घर कितनों के मन के अन्दर
वह वर्तमान, सदियों पर
सदियाँ बीती हैं !

हम बापू को रख सकते थे कब तक अगोर,
हैं जन्म-निधन जीवन डोरी के ओर-छोर,
कितना महान आदर्श हमें वे गये छोड़ !
कौमें ऊँचे आदर्शों से
ही जीती हैं !

(३)

जो गोली खाकर गिरी मरी वह थी छाया
है अजर अमर उसके आदर्शों की काया
भारत ने जिनको युग-युग तपकर उपजाया
थे हाड़-मास के व्यक्ति नहीं
बाबा गाँधी ।

जो पकड़ गया वह तो है केवल छाया
कितने दिल में षड्यन्त्री ने आश्रय पाया
कितने कुत्सित भावों ने उसको दी काया
वह एक नहीं है इस पातक का
अपराधी।

मन के अन्दर बिठलाकर नफरत के मूजी
की प्रतिमा, अपने से पूछो, कितनी पूजी?
जिस भव्य भावना के प्रतीक थे बापूजी
तुमने कितनी वह अपने
जीवन में साधी?

आजादी का गीत

हम ऐसे आजाद हमारा
झंडा है बादल!

(१)

चाँदी, सोने, हीरे मोती से सजती गुड़ियाँ,
इनसे आतंकित करने की बीत गईं घड़ियाँ,
इनसे सजधज बैठा करते जो हैं कठपुतले,
हमने तोड़ अभी फेंकी हैं बेड़ी हथकड़ियाँ;
परम्परा पुरखों की हमने जाग्रत की फिर से,
उठा शीश पर हमने रक्खा हिम किरीट उज्ज्वल!
हम ऐसे आजाद हमारा झंडा है बादल!

(२)

चाँदी, सोने, हीरे, मोती से सज सिंहासन,
जो बैठा करते थे उनका खत्म हुआ शासन,
उनका वह सामान अजायबघर की अब शोभा,

उनका वह अभिमान महज इतिहासों का वर्णन,
नहीं उसे छू कभी सकेंगे शाह लुटेरे भी,
तख्त हमारा भारत माँ की गोदी का शाद्वल !
हम ऐसे आजाद हमारा झंडा है बादल !

(३)

चाँदी, सोने, हीरे मोती से सजवा छाते,
जो अपने सिर धरवाते थे वे अब शरमाते,
फूल-कली बरसाने वाली टूट गई दुनिया,
वज्रों के वाहन अम्बर में निर्भय घहराते;
इन्द्रायुध भी एक बार जो हिम्मत से ओड़े,
छत्र हमारा निर्मित करते साठ कोटि करतल !
हम ऐसे आजाद हमारा झंडा है बादल !

(४)

चाँदी, सोने, हीरे, मोती का हाथों में दंड,
चिह्न कभी था अधिकारों का अब केवल पाखंड,
समझ गई अब सारी जगती क्या सिंगार, क्या शक्ति,
कर्मठ हाथों के अन्दर ही बसता तेज प्रचंड,
जिधर उठेगा महा सृष्टि होगी या महा प्रलय,
स्फुरित हमारे राज दंड में साठ कोटि भुजबल !
हम ऐसे आजाद हमारा झंडा है बादल !

२४

रामधारी सिंह 'दिनकर'

जवानी का झंडा

(१)

घटा फाड़ कर जगमगाता हुआ,
आ गया देख, ज्वाला का बान,
खड़ा हो, जवानी का झंडा उड़ा,
ओ मेरे देश के नौजवान !

(२)

सहम करके चुप हो गये थे समुन्दर,
अभी सुन के तेरी दहाड़,
ज़मीं हिल रही थी, जहाँ हिल रहा था,
अभी हिल रहे थे पहाड़।
अभी क्या हुआ ? किसके जादू ने आकर,
शेरों की सी दी ज़बान ?
खड़ा हो, जवानी का झंडा उड़ा,
ओ मेरे देश के नौजवान !

(३)

खड़ा हो, कि पच्छिम के कुचले हुए लोग,
उठने लगे ले मशाल,
खड़ा हो, कि पूरब की छाती से भी
फूटने को है ज्वाला कराल !

खड़ा हो कि फिर फूँक विष की लगा,
धूर्जटी ने बजाया विषान,
खड़ा हो, जवानी का झंडा उड़ा,
ओ मेरे देश के नौजवान !

(४)

गरज कर बता सबको, मारे किसी के,
मरेगा नहीं हिन्द-देश,
लहू की नदी तैर कर आ गया है,
कहीं से कहीं हिन्द-देश।
लड़ाई के मैदान में चल रहे ले के,
हम उसका उड़ता निशान,
खड़ा हो जवानी का झंडा उड़ा,
ओ मेरे देश के नौजवान !

(५)

अहा ! जगमगाने लगी रात की,
माँग में रोशनी की लकीर,
अहा ! फूल हँसने लगे, सामने देख,
उड़ने लगा वह अबीर।
अहा ! यह उषा हो के उड़ता चला,
आ रहा देवता का विमान,
खड़ा हो, जवानी का झंडा उड़ा,
ओ मेरे देश के नौजवान !

बापू

संसार पूजता जिन्हें तिलक, रोली फूलों के हारों से।
मैं उन्हें पूजता आया हूँ, बापू ! अब तक अंगारों से ॥

अंगार हार उनका, जिनकी सुन हाँक समय रुक जाता है।
आदेश जिधर का देते हैं, इतिहास उधर झुक जाता है॥
तू सहज शान्ति का दूत, मनुज के सहज प्रेम का अधिकारी।
दृग में उँड़ेल कर सहज शील, देखती तुझे दुनिया सारी॥
धरती की छाती से अजस्र, चिर-संचित क्षीर उमड़ता है।
आँखों में भरकर सुधा तुझे, यह अम्बर देखा करता है॥
इतिहास आँकता है गाथा, था भरत भूमि का एक भाग।
संयोग अकारण, वहाँ कभी फुङ्कार उठे विकराल नाग॥
विष की ज्वाला से दह्यमान हो उठा व्यग्र सारा खगोल।
मतवाले नाग अशंक चले खोले जिह्वाएँ लोल लोल॥
हंसों के नीड़ लगे जलने हंसों की गिरने लगी लाश।
नर नहीं, नारियों से होली खेलने लगा खुल सर्वनाश॥
नारी का शील गिरा खण्डित कौमार्य गिरा लोहू लुहान।
भगवान् भानु जल उठे क्रुद्ध, चिंघाड़ उठा यह आसमान॥
पर, हिली नहीं कुरु की परिषद्, पर हिले नहीं पाण्डव सभीत।
ललकार कौंधकर चली गई रह गये सोचते धर्मनीति॥
बापू तू कलि का कृष्ण विकल, आया आँखों में नीर लिये।
थी लाज द्रौपदी की जाती, केशव-सा दौड़ा चीर लिये॥
तू कालोदधि का महास्तम्भ, आत्मा के नभ का तुङ्ग केतु।
बापू ! तू मर्त्य, अमर्त्य, स्वर्ग, पृथ्वी, भू, नभ का महा सेतु॥
तेरा विराट यह रूप कल्पना-पट पर नहीं समाता है।
जितना कुछ कहूँ मगर, कहने को शेष बहुत रह जाता है॥
लज्जित मेरे अंगार; तिलक माला भी यदि ले आऊँ मैं।
किस भाँति उठूँ इतना ऊपर ? मस्तक कैसे छू पाऊँ मैं॥
ग्रीवा तक हाथ न जा सकते, उँगलियाँ न छू सकतीं ललाट।
वामन की पूजा किस प्रकार, पहुँचे तुम तक मानव विराट्॥

हिमालय के प्रति

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
साकार, दिव्य, गौरव, विराट
पौरुष की पुंजीभूत ज्वाल
मेरी जननी के हिम-किरीट
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
युग-युग अजेय, निर्बन्ध, मुक्त
युग-युग गर्वोन्नत, नित महान
निस्सीम व्योम में तान रहा
युग से किस महिमा का वितान
कैसी अखंड यह चिर-समाधि
यतिवर ! कैसा यह अमर ध्यान
तू महा शून्य में खोज रहा
किस जटिल समस्या का निदान
उलझन का कैसा विषम जाल
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
ओ मौन तपस्या-लीन यती
पल-भर को तो कर दृगोन्मेष
रे ज्वालाओं से दग्ध विकल
है तड़प रहा पद पर स्वदेश
सुख सिन्धु, पंचनद, ब्रह्मपुत्र
गंगा, यमुना की अमिय—धार
जिस पुण्य-भूमि की ओर वही
तेरी विगलित करुणा उदार
जिसके द्वारों पर खड़ा क्रान्त
सीमापति तूने की पुकार

'पद-दलित इसे करना पीछे
पहले ले मेरा सिर उतार'
उस पुण्य भूमि पर आज तपी
रे आन पड़ा संकट कराल
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे
हँस रहे चतुर्दिक विविध व्याल
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

कितनी मणियाँ लुट गईं, मिटा
कितना मेरा वैभव अशेष
तू ध्यान-मग्न ही रहा उधर
वीरान हुआ प्यारा स्वदेश
कितनी द्रुपदा के बाल खुले
कितनी कलियों का अन्त हुआ
कह हृदय खोल चित्तौर ! यहाँ
कितने दिन ज्वाल वसन्त हुआ

पूछे सिकता-कण से हिमपति
तेरा वह राजस्थान कहाँ
वन-वन स्वतन्त्रता-दीप लिये
फिरने वाला बलवान कहाँ
तू पूछ अवध से राम कहाँ
वृन्दा ! बोलो, घनश्याम कहाँ
ओ मगध कहाँ मेरे अशोक
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ

पैरों पर ही है पड़ी हुई
मिथिला भिखारिणी सुकुमारी
तू पूछ कहाँ इसने खोईं
अपनी अनन्त निधियाँ सारी

री कपिलवस्तु ! कह बुद्धदेव
के वे मंगल उपदेश कहाँ
तिब्बत, ईरान, जापान, चीन
तक गये हुए सन्देश कहाँ

वैशाली के भग्नावशेष से
पूछ लिच्छवी शान कहाँ
ओ री उदास गंडकी ! बता
विद्या-पति कवि के गान कहाँ

तू मौन त्याग कर पूछ आज
बंगाल नवाबी ताज तहाँ
भारत का अन्तिम ज्योति-नयन
मेरा प्यारा 'सीराज' कहाँ ?

तू तरुण देश से पूछ अरे
गूँजा कैसा यह ध्वंस राग
अम्बुधि अन्तस्तल-बीच छिपी
यह सुलग रही है कौन आग

प्राची के प्राङ्गण-बीच देख
जल रहा स्वर्ण-युग-अग्नि-ज्वाल
तू सिंहनाद कर जाग यती
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ
जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गांडीव, गदा
लौटा दे अर्जुन भीम वीर

कह दे शंकर से आज करें
वे प्रलय-नृत्य फिर एक बार

सारे भारत में गूँज उठे
हर-हर बम का फिर महोच्चार
ले अँगड़ाई उठ, हिले धरा
कर निज विराट स्वर में निनाद
तू शैलराट् ! हुंकार भरे
फट जाय कुहा, भागे प्रमाद
तू मौन त्याग कर सिंहनाद
रे तपी ! आज तप का न काल
नवयुग शंख-ध्वनि जगा रही
तू जाग-जाग मेरे विशाल !
मेरे जननी के हिम-किरीट
मेरे भारत के दिव्य भाल
नवयुग शंख-ध्वनि जगा रही
जागे नगपति ! जागे विशाल !

जनता और जवाहर

फीकी उसांस फूलों की है,
मद्धिम है जोति सितारों की;
कुछ बुझी-बुझी-सी लगती है
झंकार हृदय के तारों की।
चाहे जितना भी चांद चढ़े,
सागर न किन्तु, लहराता है;
कुछ हुआ हिमालय को, गरदन
ऊपर को नहीं उठाता है।
अरमानों में रोशनी नहीं,
इच्छा में जीवन का न रंग,

पांखों में पत्थर बांध कहीं
सूने में जा सोई उमंग।
गम की चट्टानों के नीचे
जिन्दगी पड़ी सोई-सी है,
निर्वापित दीप हुआ जब से,
जनता खोई-खोई-सी है।
झालरें ख्वाब के परदों की,
झांकी रंगीन घटाओं की,
दिखलाते हैं ये तसवीरें,
किसको आसन्न छटाओं की?
तम के सिर पर आलोक बांध
डूबा जो नरता का दिनेश
उस महासूर्य की याद लिये
बेहोशी में है पड़ा देश।
औरों की आँखें सूख गई,
हैं सजल दीनता के लोचन।
औरों के नेता गये, मगर,
जनता का उजड़ गया जीवन।
चुभती है पल-पल, घड़ी-घड़ी
अन्तर में गाँठ कसाले की
भूलती याद ही नहीं कभी
छाती छिदवाने वाले की॥
आँखें वे मलिन गुफाओं में
शीतल प्रकाश भरने वाली
मुस्कानें वे पीयूषमयी,
उम्मीद हरी करने वाली॥

सबके पापों का बोझ उठाये
फिरना जान अकेली पर।
बापू का वह घूमना प्राण
को निर्भय लिये हथेली पर ॥
अभिशप्त देश के हाथों से
विष-कलश खुशी से ले जाना।
फिर उसी अभागे की खातिर
अनमोल जिन्दगी दे देना ॥
इन अमिट झाँकियों से लिपटा
अन्तर स्वदेश का सोता है
है किसे फिक्र आवाज सुने ?
समझे कि कहाँ क्या होता है ?
इस घमासान अंधियाले में
आशा का दीपक एक शेष,
जनता के ज्योतिर्नयन ! तुम्हें
ही देख-देख जी रहा देश।
जो मिली विरासत तुम्हें,
आँख उसकी आँसू से गीली है।
आशाओं में आलोक नहीं,
इच्छाएँ नहीं रंगीली हैं ॥
इस महासिन्धु के प्राणों में
आलोड़न फिर भरना होगा।
जनतन्त्र बसाने के पहले
जन को जाग्रत करना होगा ॥
सपनों की दुनिया डोल रही,
निष्ठा के पग थर्राते हैं।

तप से प्रदीप्त आदर्शों पर,
बादल-से छाये जाते हैं ॥
इस गहन तमिस्रा को वेधो,
शायक नवीन सन्धान करो।
ऊँघती हुई सुषमाओं का
किरणों पर चढ़ आह्वान करो ॥
जनता विषण्ण, जनता उदास,
जनता अधीर अकुलाती है।
निरुपाय तुम्हारी जय पुकार
वह अपना हृदय जुड़ाती है ॥
तम-गहन उदासी के भीतर
आशा का यह उच्चार सुनो।
इस महाघोर अँधियाले में
अपनी यह जय-जयकार सुनो ॥
भीतर आवेगों की आँधी
ज्यों ज्यों हो विवश मचलती है।
त्यों-त्यों अधीर जन-कंठों से
आकुल जयकार निकलती है।
हैं पूछ रहे जय के निनाद,
कब तक यह रात खतम होगी ?
सूखेंगे भीगे नयन और
वेदना देश की कम होगी ॥
जो स्वर्ग हवा में हिलता है,
मिट्टी पर वह कब आयेगा ?
काले बादल हैं जहाँ, वहाँ
कब इन्द्रधनुष लहरायेगा ?

झूलता तुम्हारी आँखों में
जो स्वर्ग, हमारी आशा है।
तुम पाल रहे हो जिसे, वही
भारत-भर की अभिलाषा है॥
आँसू के दानों में भरते,
वे मोती निर्धनता के हैं।
लिखते हो जो कुछ, वही लेख,
सौभाग्य दीन जनता के हैं॥
सब देख रहे हैं राह, सुधा
कब धार बाँधकर छूटेगी।
नरवीर! तुम्हारी मुट्ठी से
किस रोज रोशनी फूटेगी?
है खड़ा तुम्हारा देश, जहाँ भी
चाहो, वहीं इशारों पर!
जनता के ज्योतिर्नयन! बढ़ाओ
कदम चाँद पर, तारों पर॥
है कौन जहर का वह प्रवाह
जो तुम चाहो औ' रुके नहीं?
है कौन दर्पशाली ऐसा
तुम हुक्म करो, वह झुके नहीं?
न्योछावर इच्छाएँ, उमंग,
आशा, अरमान जवाहर पर।
सौ-सौ जानों से कोटि-कोटि
जन हैं कुरबान जवाहर पर॥
नाजाँ है हिन्दुस्तान,
एशिया को अभिमान जवाहर पर।
करुणा की छाया किये रहें
पल-पल भगवान् जवाहर पर॥

२५

नरेन्द्र शर्मा

देवली की दुनिया

एक हमारी भी दुनिया है घिरी कँटीले तारों से।
इन तारों के, दीवारों के, पार चाँद-सूरज उगते हैं।
ऊपर, दिन के हंस, रात के मानस के मोती चुगते हैं!
हम भी दूर-दूर दुनिया से उन सूने नभ-तारों से!
हम दीवारों के भीतर हैं, मन के भीतर हैं मनुहारें।
पर पलकों की ओट नहीं होने देतीं काली दीवारें।
मन मारे मनुहार पड़ी है बँधी कँटीले तारों से!
यहाँ कँटीले तार खिंचे हैं जिनके पार रँगीले बादल!
साँझ-सुबह के बादल दिखते जैसे खिले डाल पर पाटल!
पूछो लाल रंग कैसा है बिंधी हुई मनुहारों से?
बुलबुल गीत यहाँ भी गाती, कभी सुबह पीलो उड़ आती।
नील चँदोवे में रजनी भी रत्नों के नक्षत्र सजाती!
हम भी सोते-जगते, हँसते-रोते घिर दीवारों से!
बाहर करवट लेती दुनिया, बदल रहा जग बिना बताए!
कौन जीवितों की समाधि पर फूल गिराए, ओस चुआए?
सजते नहीं नए घर, प्यारे, उजड़े वन्दनवारों से!
युग-परिवर्तन के इस युग में बैठे कर्तव्यों से वंचित।
दुनिया का मुँह देखा, बाकी केवल बीते की सुधि संचित!
दूर समय की धारा बहती छूटे हुए कगारों से!

पर जो दूर गरजता सागर हम भी उसकी एक लहर हैं।
उस विशाल के कण हैं हम भी महाकाल के एक प्रहर हैं!
गति को कब तक बाँध सकोगे पूछो पहरेदारों से?
हैं अगाध अम्बुधि में लहरें, लहर-लहर पर क्षुब्ध फेन-कण।
झलकेंगे हम मिटते-मिटते प्रलय-लास में क्या न एक क्षण?
हाथ उठाकर होड़ लगाएँ लहरों की ललकारों से!
वह्नि-वृष्टि की चिनगारी हम दबकर बीज बनेंगे ऐसा।
जिसके दल होंगे लपटों से और फूल होगा शोले-सा।
कुट-पिटकर कुछ निखरेंगे ही हम नित नए मुहारों से!

हिन्दू-मुसलमान

मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं?

मैं तुम्हें समझता रहा म्लेच्छ,
तुम मुझे वणिक औ' दहकानी!
सदियों हम दोनों साथ रहे
यह बात न अब तक पहचानी—
दोनों ही धरती के जाये
हम अनचाहे मेहामन नहीं!

मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं?

हैं अलग-अलग हम दोनों के
व्यवहार-मान, जीवन-दर्शन
सांस्कृतिक स्रोत दोनों के दो,
करते दो भावों का सिंचन;
पर दो होकर भी मिल न सके,
तो दोनों का कल्याण नहीं!

मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

तुममें देशान्तर की समष्टि,
मैं कालान्तर का दृष्टि-दीप !
जीवन-सागर के दो मोती
है देश-कालगत युगल सीप !
मोती को हम मिट्टी समझे
क्या दोनों का अज्ञान नहीं ?

मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

इस्लाम-पूर्व की संस्कृतियाँ,
भाषाएँ तुमने अपनाईं !
इस्लाम-पूर्व के शाहों की
गाथाएँ कवियों ने गाईं !
फारस तुर्की को अपनाया,
क्या अपना हिन्दुस्तान नहीं ?

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

काफिर थे फिर भी अपनाये
इस्लाम-पूर्व के ईरानी !
तुमने मंगोलों से सीखी
रण-चतुराई औ' खाकानी !
इस्लाम—पूर्व के हिन्द देश की
क्यों तुमको पहचान नहीं ?

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

मैं हिन्दू हूँ, योद्धा हिन्दू,
करता था तुमसे असहयोग!
था छूत भूत से दबा हुआ
घर घुसनेपन का रहा रोग!
मेरी जागृति का अमृत किन्तु
होगा तुमको विष-पान नहीं!

मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं?

अब तो सदियों की नींद खुली,
इतिहास, ज्ञान, विज्ञान, मिले!
मुरझाये थे जो प्रेम-फूल,
कर नवजीवन-रस-पान खिले!
गुल-कमल खिलेंगे साथ-साथ,
यह हिन्द अभी वीरान नहीं!

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं?

मैं देशान्तर-व्यापी मुस्लिम—
इतिहास करूँगा हृदयंगम!
पहले भी तो यवनों के सँग
था हुआ हिन्दियों का संगम!
क्या हम दोनों, दोनों का ही
कर सकते अब सम्मान नहीं?

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं?

तुमको है प्यारी खुद्दारी,
मुझको विनम्रता आभूषण!

तुम आसमान के अभिलाषी,
मुझको प्रिय हैं धरती के कण !
पर क्या भू में मिलती न देह ?
नभ में खो जाते प्राण नहीं ?
मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान;
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

जन-क्रांति जगाने आई है,
उठ, हिन्दू ! उठ, ओ मुसलमान !
संकीर्ण भेद-सन्देह त्याग,
उठ महादेश के महा प्राण !
क्या पूरा हिन्दुस्तान न यह ?
क्या पूरा पाकिस्तान नहीं ?
मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

२६

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

जन-जन के मन में

कैसे मैं जन-जन के मन में वह ज्वाला धधकाऊँ
जिसमें जलकर राख बने सदियों की मिली गुलामी
बोलो! मैं कैसे सुलगाऊँ धूनी वही अनामी
मानवता की भूख-पराजय जिसमें धू-धू जलती
दलित बुभुक्षित की प्रतिहिंसा जिसके पीछे चलती
जो आपस की फूट जला आपस का भेद मिटाती
भूखों नंगों और हताशों को जो अमर बनाती
किस अनदेखे ज्वालागिरि से मैं वे लपटें लाऊँ
कैसे मैं जन-जन के मन में वह ज्वाला धधकाऊँ
कैसे फूँकूँ कंठ-कंठ में मैं विप्लव की भेरी
मुझ में इतनी जलन मगर कितनी परवशता मेरी
कैसे उद्वेलित कर दूँ मैं हृदय-हृदय की वाती
मेरी शक्ति आज क्यों लौ को ही पकड़ न पाती
कैसे जागे रक्त-सिन्धु में ज्वार युगों का सोया
कैसे मिले हड्डियों में जो वज्र युगों से खोया
मैं जलता आया पर बोलो कैसे तुम्हें जलाऊँ
कैसे मैं जन-जन के मन में वह ज्वाला धधकाऊँ
कैसे सुलगाऊँ मैं वह जो आग युगों की प्यासी
है जिसके अंगारों का अभिसार सदा अविनाशी

बलिदानों के खूँ से सजती जिसकी सदा ललामी
होती जिसकी बारूदों के महलों बीच सलामी
जहाँ बदलते युग अपने पापों का लेखा देते
ज्वालामुखी इसी का लावा संचित कर रख लेते
ईंधन बहुत मिलेगा पर वह आग कहाँ से लाऊँ
कैसे मैं जन-जन के मन में वह ज्वाला धधकाऊँ

नव संस्कृति से

तुम मेरे साथ चली आओ।
पथ की बाधाओं से न डरो सहमो न तनिक तुम घबराओ
तुम मेरे साथ चली आओ।
महलों के वैभव में अब तक तुम छवि की छाया सी भूलीं
रागों में स्वर बन लहराईं, निशि में शेफाली सी फूलीं
कितनी अतृप्त परवशता थी, तुम चीर जिसे बाहर धाईं
कितनी ऊँची दीवारें थीं, तुम छोड़ जिन्हें पीछे आईं।
तूफान यहाँ चलते जिनमें यौवन की नींवें हिल जातीं
सबकी समता के सपने के पीछे कितनी जानें जातीं
है स्वप्न अभी सब जिसके पीछे यह बलिदानों की धारा
जाने कैसा होगा अन्तिम संघर्ष-हितों का निपटारा
अवकाश कहाँ हम सोच सकें यह सब, हमको आगे बढ़ना
अज्ञात लक्ष्य की दूरी है, हमको नूतन जीवन गढ़ना
मेरे प्रेरक आह्वानों की तुम ज्योति शिखा बन लहराओ
अब तक विराम की मंजिल थी, अब गति की ज्वाला बन जाओ
आओ युग की प्रतिहिंसा बनकर, मेरे साथ चली आओ।
तुम मेरे साथ चली आओ॥

२७

शिवमंगलसिंह 'सुमन'

जीवन और गीत

अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ
अभी ब्रज-वीथियाँ सूनी
अभी सूना पड़ा मधुवन
अभी झुलसे लता तरुगण
अभी उजड़ा पड़ा उपवन
अभी सावन कहाँ ?
जिसके लिए बन मेघ छाता हूँ
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

कहाँ मधु से भरी प्याली
कहाँ उमड़ा हुआ यौवन
कहाँ अरमान में आँधी
कहाँ तूफान में जीवन
अभी मधुऋतु कहाँ ?
दिन-रात पतझर ही मनाता हूँ
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

न पत्थर में कहीं पारस
न कर्षण शक्ति चुम्बक में
कहाँ लौ में जलन बाकी
कहाँ है स्नेह दीपक में

दिवाली भी कहाँ ?
जिसके लिए तन मन जलाता हूँ
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

कहाँ है क्षोभ झरनों में
कहाँ सागर में अकुलाहट
कहाँ सरिता में विह्वलता
लिए अभिसार की आहट
कहाँ संगम ? अभी
अविराम प्यासा छटपटाता हूँ
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

कहाँ कलियों में है शोखी
कहाँ रस ज्ञान उपलों में
कहाँ सौरभ है साँसों में
कहाँ मकरन्द मुकुलों में
कहाँ मधु ? वन मधुप
जिसके लिए मैं गुनगुनाता हूँ
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

कहाँ झंकार वीणा में
गमक तबलों मृदंगों में
अभी नव स्फूर्ति ताण्डव की
समा पाई न अंगों में
अभी सम-ताल-यति—
गति हीन तानें ही सुनाता हूँ

अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

अभी माँगा न तृष्णा ने
अगम मधु सिन्धु का मन्थन
अभी विष तक पचाने का
उठा उर में न आन्दोलन
न जानें अग्नि-
चुम्बन से अभी क्यों जी चुराता हूँ
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

अभी केवल सुना है
कल्पतरु होता है नन्दन में
अभी लाया कहाँ हूँ
कामधेनू जग के आँगन में
अभी तो शून्य में
ही दूध की गंगा बहाता हूँ
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

अभी आकुल है कायाकल्प
करने को मही सारी
कहाँ जीवन अभी तो
हो रही जीवन की तैयारी
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

छोड़कर नगरी तुम्हारी जा रहा हूँ

याद तो होगा तुम्हें वह दिन सलोना—
जब तुम्हारे द्वार पर आया अकेला
शून्य नयनों में लगा था वेदना का मूक मेला
एक ही मुस्कान से जब भर दिया तुमने हृदय का रिक्त कोना
याद तो होगा तुम्हें वह दिन सलोना,
मैं उसी मुसकान की आभा चुरा कर
दिग्दिगन्तों में लुटाने जा रहा हूँ
छोड़कर नगरी तुम्हारी जा रहा हूँ।

❀

याद तो होगा तुम्हें वह गान मनहर—
जो सुनाकर स्नेह का वरदान माँगा
पलक-पल्लव की अरुणिमा में मधुर मधुमास जागा
गुनगुना कर मन्द्रसप्तक में तुम्हीं ने कर दिये झंकृत मधुर स्वर
याद तो होगा तुम्हें वह गान मनहर,
मैं उसी झंकार की मद-मूर्च्छना ले
चर-अचर सबको सुनाने जा रहा हूँ
छोड़कर नगरी तुम्हारी जा रहा हूँ।

❀

याद तो होगा तुम्हें वह मधु-मिलन-क्षण—
जब हृदय ने स्वप्न को साकार देखा
मिट गई दुर्भाग्य के भी भाग्य की जब अमिट रेखा
ढाल जब अनजान में तुमने दिये इन शुष्क अधरों में अमृत-कण
याद तो होगा तुम्हें वह मधु-मिलन-क्षण,
मैं उन्हीं दो-चार बूँदों के सहारे
विश्व-व्यापक-विष बुझाने जा रहा हूँ
छोड़कर नगरी तुम्हारी जा रहा हूँ।

कवि-परिचय

१ : : कबीरदास

कबीरदास निर्गुण धारा की ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि भक्त कवि हैं। आपकी नूतन साधना-पद्धति और क्रान्तिकारी विचार-धारा के कारण मध्य युग के कवियों में आपका विशिष्ट स्थान है। कबीर जाति-पाँति और रूढ़िवाद के कट्टर विरोधी थे। आपने हिन्दू और मुसलमान दोनों को धार्मिक संकीर्णता के लिए यत्र-तत्र खूब फटकारा है। आपकी दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान दोनों में कोई भेद न था।

आपकी साखी तथा सबद हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। आपकी रचनाओं का संग्रह 'बीजक' नाम से प्रकाशित है।

२ : : सूरदास

भक्तिकालीन कवियों में सूरदास कृष्ण-भक्ति शाखा की सगुण उपासना-पद्धति के प्रतिनिधि कवि हैं। उनका वात्सल्य-वर्णन हिन्दी-काव्य की अनुपम देन है। सूरदास जी बड़े भावुक व्यक्ति थे। इनकी रचनाओं से ऐसा प्रकट होता है कि यह जन्मान्ध नहीं थे, क्योंकि उनके वर्णन ऐसे सजीव हैं कि वे बिना निजी अनुभव के नहीं लिखे जा सकते। उन्होंने बाल-कृष्ण के सोते हुए अधर-पुट हिलने का अथवा गोपियों की क्रीड़ा तथा रास-लीला का जो वर्णन किया है, वह ऐसा नहीं है कि किसी से सुनकर लिख दिया गया हो।

उनकी प्रसिद्ध साहित्यिक रचना 'सूरसागर' है, जो श्रीमद्भागवत के आधार पर ब्रजभाषा में लिखा गया है। 'सूरसागर' में सबसे मर्म-स्पर्शी अंश 'भ्रमरगीत' है। 'सूरसागर' के अतिरिक्त आपकी 'साहित्य-

लहरी', 'सूरसारावली', 'नल-दमयन्ती' और 'ब्याहलो' आदि कृतियाँ प्रसिद्ध हैं।

३ : : तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास जी अपने 'रामचरितमानस' के द्वारा हिन्दी-साहित्य में सदा-सर्वदा के लिए अमर हो गए हैं। वह मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के अनन्य भक्त थे, और समस्त संसार को 'सियाराममय' देखते थे। उन्होंने भक्ति और प्रेम की पिपासा में चातक को आदर्श माना है। मर्यादा के अनुकूल वह अन्य देवी-देवताओं की भी उपासना करते थे, पर उनसे राम-भक्ति की याचना करके अपनी अनन्यता की रक्षा के लिए ही।

आपकी रचनाओं में 'मानस' के अतिरिक्त 'दोहावली', 'कवितावली', 'गीतावली', 'रामाज्ञा-प्रश्नावली', 'विनय-पत्रिका', 'रामललानहछू', 'पार्वती-मंगल', 'जानकी-मंगल', 'बरवैरामायण' 'वैराग्यसन्दीपिनी', और 'कृष्ण-गीतावली' आदि ग्यारह और प्रामाणिक हैं।

४ : : मीराबाई

मीराबाई को बचपन से ही कृष्ण का इष्ट हो गया था और वह अपने को उन्हीं से विवाहित समझती थीं। विवाह के कुछ दिन उपरान्त वह विधवा हो गईं। वह प्रायः सन्तों की संगति में ही रहती थीं और मन्दिरों में जाकर कृष्ण की मूर्ति के सामने नाचती तथा गाती थीं। मीरा की वाणी का गुजरात में बहुत आदर है। उनके काव्य में प्रेम की पीड़ा, तीव्र अनुभूति और हार्दिकता का परिचय मिलता है।

आपकी रचनाओं में 'नरसी का मायरा', 'गीतगोविन्द-टीका', 'रामगोविन्द' और 'राग सोरठा' आदि प्रमुख हैं।

५ : : नरोत्तमदास

कविवर नरोत्तमदास अपने 'सुदामा-चरित' काव्य के कारण अमर हो गए हैं। 'सुदामा-चरित' विशुद्ध ब्रजभाषा में है। छोटा-सा काव्य होते हुए भी सरसता और भावुकता से परिपूर्ण है। 'सुदामा-चरित' के अतिरिक्त आपकी और कोई कृति नहीं मिलती। 'सुदामा-चरित' में सुदामा जी की दरिद्रता और कृष्ण की आदर्श मित्रता आदि का सुन्दर और चित्ताकर्षक वर्णन है। प्रवाहमयी सरस अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह हिन्दी का अच्छा काव्य है।

६ : : रहीम

रहीम का पूरा नाम अब्दुलरहीम खानखाना था। यह संस्कृत, अरबी और फारसी के बड़े विद्वान थे। यह प्रकृति से बड़े दयालु थे। दानशील भी पूरे थे और वीरता में भरपूर थे। रहीम के दोहों में तुलसी की-सी मार्मिकता और भावुकता के दर्शन होते हैं। तुलसीदास जी से उनकी घनिष्ठ मित्रता थी। एक बार अपना सब-कुछ लुटाकर फकीर हो बैठे थे।

मुसलमान होने पर भी रहीम ने हिन्दू धर्म और संस्कृति का अच्छा परिचय प्राप्त किया था। उन्होंने हिन्दू धर्म के अनेक रीति-रिवाजों का अपने दोहों में उल्लेख किया है।

७ : : रसखान

रसखान दिल्ली के पठान सरदार थे। गोस्वामी विट्ठलनाथ के उपदेश से उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हो गए। तब से ही उनका नाम 'रसखान' पड़ा। इनका वास्तविक नाम सैयद इब्राहीम था। आपकी रचनाओं में श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति का प्रदर्शन किया गया है।

रसखान की रचना अत्यन्त सरस, कोमल और भाव-गर्भित है। इन्होंने बड़े मार्मिक शब्दों में प्रेम की अभिव्यंजना की है। इनकी रचनाओं में भगवान् कृष्ण के प्रति आत्म-समर्पण, अनन्य प्रेम और तल्लीनता दिखाई देती है। आपकी कृतियों के 'प्रेम-वाटिका' और 'सुजान-रसखान' नामक दो संग्रह मिलते हैं।

८ : : बिहारीलाल

बिहारी शृङ्गार रस के उत्कृष्ट कवि थे। कहते हैं कि जयपुर के महाराज जयसिंह इनके सरस दोहों पर मुग्ध होकर इन्हें प्रत्येक दोहे पर एक-एक अशर्फी देते थे। उनके इस प्रकार के दोहे 'बिहारी-सतसई, में संग्रहीत हैं।

'बिहारी-सतसई' हिन्दी-साहित्य का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस पर अनेक विद्वानों ने टीकाएँ की हैं। बिहारी की रचना की विशेषता यह है कि वह अपनी वाग्-विदग्धता और शब्द-चमत्कार से एक-एक दोहे में बड़ी ऊँची उड़ान भरते थे। उनका काव्य 'गागर में सागर' के समान है।

९ : : भूषण

शृङ्गार-युगीन परम्परा में वीररस का प्रवर्तन करने वाले आप सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। भूषण प्रायः राजाओं के आश्रय में ही रहा करते थे। चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने इन्हें कवि भूषण की उपाधि दी थी, तभी से आप भूषण के नाम से प्रसिद्ध हुए। अन्त में आपने अपने वीर-काव्य का नायक छत्रपति शिवाजी को बनाया। शिवाजी ने इन्हें एक-एक-छन्द पर लाखों रुपये दिये। पन्ना के महाराज छत्रसाल के यहाँ भी भूषण का बड़ा मान हुआ था। तभी उन्होंने 'छत्रसाल-दशक' लिखा। इनकी रचनाओं में इसके अतिरिक्त 'शिवाबावनी' तथा 'शिवराज-भूषण' और प्रसिद्ध हैं। भूषण की कविता वीररस का साकार रूप है।

१० : : भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का नाम हिन्दी के निर्माताओं में प्रमुख स्थान रखता है। आपकी अधिकांश रचनाएँ ब्रजभाषा में हैं। खड़ी बोली में भी आपने बहुत कुछ लिखा है। कविता के अतिरिक्त आपने हिन्दी-गद्य की अभिवृद्धि में भी पर्याप्त योग दिया था। उनका गद्य उत्कृष्ट कोटि के गद्य के सामने भी आदरणीय स्थान रखता है। उनके नाटक इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

भारतेन्दुजी ने भाषा के नये स्वरूप को बनाने में पर्याप्त योग दिया था। उन्होंने अपनी रचनाओं में ब्रजभाषा के साथ-साथ बोल-चाल की भाषा को भी स्थान दिया। उन्होंने उसमें तत्सम शब्दों का प्रयोग भी बहुलता से किया।

अपनी रचनाओं में वे पूर्णतया सुधारवादी के रूप में प्रकट हुए हैं। समाज में प्रचलित रूढ़ियों का विध्वंस करके उन्होंने समाज में नई मान्यताएँ प्रचलित कीं। केवल ३४ वर्ष की अल्पायु तक जीवित रहने पर भी आपने हिन्दी-कविता और समग्र साहित्य की जो सेवा की, वह अभिनन्दनीय है। उनकी इस हिन्दी-सेवा से प्रसन्न होकर ही हिन्दी-जगत् ने उनको 'भारतेन्दु' की उपाधि से विभूषित किया था।

११ : : श्रीधर पाठक

पाठकजी ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों ही भाषाओं के सफल कवि थे, किन्तु इनकी रचनाओं को देखने से यह अवश्य पता चलता है कि इनकी खड़ीबोली की कविता की अपेक्षा ब्रजभाषा की रचनाएँ अधिक सफल हैं।

इन्होंने अंग्रेजी के कवि गोल्ड स्मिथ और संस्कृत के कवि कालि-दास की रचनाओं का हिन्दी में रूपान्तर किया है। ऐसी कृतियों में

उनकी 'एकान्तवासी योगी', 'भ्रान्त पथिक', 'ऊजड़ ग्राम' और 'ऋतु-संहार' आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

आपकी मौलिक रचनाओं में 'भारत-गीत', 'जगत्-सचाई-सार', 'काश्मीर-सुषमा' और 'देहरादून' प्रमुख हैं। स्फुट कविताओं का संग्रह भी आपका 'मनोविनोद' नाम से प्रकाशित हो चुका है। प्रकृति-प्रेम की झलक आपकी अधिकांश रचनाओं में दृष्टिगत होती है।

१२ : : अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

श्री उपाध्याय जी का नाम खड़ी बोली की कविता के इतिहास में तब तक अमर रहेगा, जब तक कि हिन्दी का अस्तित्व है। कारण कि उन्होंने ब्रजभाषा की पुरानी, घिसी-पिटी परिपाटी को तिलांजलि देकर उन दिनों खड़ीबोली में कविता करने का साहस किया था, जब कि यह बड़ा ही कठिन काम था।

उनकी सबसे प्रमुख विशेषता यही है कि वह हिन्दी में जिस तन्मयता से कविता करते थे, उससे भी कहीं अधिक अधिकारपूर्वक ब्रजभाषा में रचनाएँ कर लेते थे। उनकी 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे', 'बोल-चाल' तथा 'फूल-पत्ते' आदि कृतियाँ इसकी ज्वलन्त साक्षी हैं।

'प्रिय-प्रवास' तथा 'वैदेही-वनवास' आपके दो महाकाव्य हिन्दी-साहित्य की अतुल निधि हैं। इनमें से 'प्रिय-प्रवास' का स्वागत हिन्दी-जगत् में बहुत हुआ है। आपको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से 'प्रिय-प्रवास' पर १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी प्राप्त हुआ था।

१३ : : मैथिलीशरण गुप्त

श्री गुप्तजी हिन्दी-कविता की राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत माने जाते हैं। उनकी समस्त कृतियों में भारत के अतीत गौरव की झाँकी यत्र-

तन्त्र देखने को मिलती है। राष्ट्रीय जागरण के उस काल में आपकी 'भारत-भारती' से पर्याप्त जागृति हुई थी।

गुप्तजी की रचनाओं में हमारे धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा राजनीतिक जागरण का अमिट सन्देश निहित है। 'भारत-भारती' के अतिरिक्त इनके 'साकेत' और 'यशोधरा' नामक काव्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त आपकी 'जयद्रथ-वध', 'शकुन्तला', 'किसान', 'पञ्चवटी', 'गुरुकुल', 'द्वापर' तथा 'अजित' आदि काव्य पुस्तकें उल्लेखनीय हैं।

गुप्तजी को उनके 'साकेत' नामक प्रबन्ध-काव्य पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हो चुका है।

१४ : : जयशंकर 'प्रसाद'

प्रसादजी हिन्दी-कविता में रहस्यवादी धारा के प्रवर्तक कवि थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में चरम परिणति देकर वस्तुतः हिन्दी-काव्य पर भारी उपकार किया था।

कविता के अतिरिक्त उन्होंने नाटक, उपन्यास तथा निबन्ध के क्षेत्र में अपनी जो अमूल्य देन दी है, वह गौरव की वस्तु है। उनके नाटकों तथा उपन्यासों का कथानक बिलकुल ही भिन्न दृष्टिकोण लिये हुए हैं। नाटकों का कथानक तो सब ही सांस्कृतिकता से आवृत है। आपने उपन्यासों के द्वारा समाज में प्रचलित कुरीतियों एवं रूढ़ियों के उन्मूलन करने का प्रयत्न किया था।

'कामायनी' आपका अमर काव्य है। इसके अतिरिक्त 'आँसू', 'लहर', 'झरना', 'कानन-कुसुम' आदि उल्लेखनीय काव्य-कृतियाँ हैं। 'कामायनी' पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा १२००) का मंगला-प्रसाद पारितोषिक भी प्राप्त हुआ था। खेद है कि यह सम्मान उन्हें

उनके जीवन में प्राप्त न हो सका। जन्म-जात प्रतिभा होने के कारण श्री प्रसादजी ने बहुत थोड़ी उम्र में ही जो ख्याति अर्जित की थी, वह आश्चर्य की बात है।

१५ : : माखनलाल चतुर्वेदी

श्री चतुर्वेदी जी 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से भी हिन्दी में विख्यात हैं। आपने अधिकांश राष्ट्रीय रचनाएँ इसी नाम से लिखी हैं। आपके जीवन का अधिकांश समय ब्रिटिश नौकरशाही से लोहा लेने में ही व्यतीत हुआ।

द्विवेदी-युगीन राष्ट्रीय जागृति के सन्देशवाहक कवि के रूप में आपका नाम लिया जाता है। किन्तु यह भी ध्यान देने की बात है कि उनकी राष्ट्रीयता में भी रहस्यवाद की झलक देखने को मिलेगी। प्रकृति के चित्रण में जहाँ वह रहस्यवादी हैं, वहाँ राष्ट्रीयता की भी झाँकी दर्शनीय है। प्रकृति और देश-प्रेम का यह अपूर्व सम्मिश्रण चतुर्वेदीजी की विशेषता है।

आपकी रचनाओं में 'हिम-किरीटिनी', 'हिम-तरंगिनी' (काव्य) तथा 'साहित्य-देवता' (विचार-गद्य) आदि उल्लेखनीय हैं। आप अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के हरिद्वार-अधिवेशन के सभापति भी रह चुके हैं।

१६ : : सुभद्राकुमारी चौहान

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान देश की पुकार पर तन-मन होम देने वाली महिलाओं में से थीं। उनकी कविताओं में जन-साधारण की ध्वनि रागिनी का रूप धारण करके मुखरित हो उठी है।

राष्ट्रीय धारा की कविताओं के अतिरिक्त उन्होंने शैशव के मनोहारी चित्र भी अपनी कविताओं में अंकित किये हैं। इसके अतिरिक्त

कहानियों के क्षेत्र में भी आपने पर्याप्त ख्याति अर्जित कर ली थी।

सुभद्रा जी के काव्य में उस निराशा, वेदना अथवा पीड़ा की परिणति नहीं हुई, जो छायावादी तथा रहस्यवादी युग के कवियों में पाई जाती है। उनकी कविता में तो राष्ट्र के प्रति मर मिटने की साध ही स्थल-स्थल पर दृष्टिगोचर होती है। उनकी 'झाँसी की रानी' कविता तो उन्हें सदा-सर्वदा के लिए अमर कर गई।

उनकी रचनाओं में 'मुकुल' तथा 'बिखरे मोती' पर सेकसरिया-पारितोषिक भी प्राप्त हो चुका है। इनके अतिरिक्त 'सीधे-सादे चित्र,' 'सभा के खेल' तथा 'त्रिधारा' आदि उनकी रचनाएँ मुख्य हैं।

१७ : : बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

'नवीन' जी की कविता हिन्दी-साहित्य के राष्ट्रीय उत्पत्तिकाल की सन्देश-वाहिका है। इसे तो कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकेगा। जिन्होंने उनकी 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये' कविता सुनी या पढ़ी है, वे उनके इस स्वरूप से भली भाँति अवगत हो चुके होंगे। लेकिन यह गौरव की बात है कि जिस सफलता के साथ 'नवीन' जी ने राष्ट्रीयता का राग अलापा है, उसी तन्मयता से जीवन की रंगीनियों से ओत-प्रोत मादक रहस्यात्मक गीतों की धारा भी अजस्र वेग से बहाई है। उनका दोनों ही प्रकार की भावना, कल्पना एवं चेतना पर समान अधिकार है।

'नवीन' जी जहाँ राष्ट्रीयता का भैरव सन्देश अपनी रचनाओं में देते हैं, वहाँ वह मानव-जीवन के इतिहास की अभिव्यक्ति बड़ी ही सबल भाषा में प्रस्तुत करते हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन के कर्मठ सेनानी के रूप में आपकी कविता कारावास के दिनों में ही प्रायः प्रस्फुटित हुई है। सौन्दर्य-अन्वेषण की अचूक परख आपके गीतों में प्रायः देखने को मिलती है।

आपकी रचनाओं में 'कुंकुम', 'अपलक', 'रश्मि-रेखा' तथा 'क्रान्ति' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आपका शब्द-चयन, भाव-गुम्फन तथा रचना-शैली अपूर्व और सर्वथा अपनी है।

१८ : : श्री रामनरेश त्रिपाठी

श्री त्रिपाठी जी खड़ीबोली हिन्दी के उच्च कोटि के कवियों में से हैं। उनकी कविताओं ने राष्ट्रीय जागरण में जो योग दिया, वह उल्लेखनीय है। ग्राम-गीतों के संकलन के कारण भी श्री त्रिपाठी जी का हिन्दी-साहित्य के इतिहास में विशेष स्थान है।

राष्ट्रीय कवि होने के साथ-साथ श्री त्रिपाठी जी प्रकृति और प्रेम के चितेरे कवि भी हैं। उनके 'पथिक', 'मिलन' तथा 'स्वप्न' नामक खण्ड-काव्य इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। 'मानसी' नाम से आपकी फुटकर कविताओं का संग्रह प्रकाशित हो चुका है। 'कविता-कौमुदी' के कई भागों में आपने हिन्दी-काव्य की समीचीन समीक्षा प्रस्तुत की है।

१६ : : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

श्री 'निराला' जी हिन्दी-कविता के उन्नायक प्रतिभाशाली कवियों में हैं। उन्होंने जो-कुछ लिखा है वह बड़ी सरस, सजीव एवं सबल शैली में लिखा है। अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों से ही आपकी रुचि वेदान्त की ओर हो गई थी, इस कारण आपकी रचनाओं में रहस्यवाद का समावेश अधिक परिलक्षित होता है।

'निराला' का पालन-पोषण बंग-संस्कृति के वातावरण में होने के कारण उनकी रचनाओं पर बंगला की छाप यत्र-तत्र है। 'निराला' जी अपने काव्य में केवल प्रकृति तक ही सीमित न रहकर जन-जन के जीवन में गहरे पैठे हैं। परिणामस्वरूप उनकी रचनाओं में जहाँ हमें प्रकृति

का विशद वर्णन मिलता है वहाँ गरीब भिखारियों तथा मज़दूरों की दयनीय अवस्था का वर्णन भी देखने को मिलता है।

'निराला' जी के गीत अपना विशेष स्थान रखते हैं। उनमें जहाँ सौन्दर्य तथा प्रेम की मादक अभिव्यक्ति है वहाँ वे शब्दावली में भी पूर्ण गेयात्मकता लिये हुए होते हैं। आपकी काव्य-रचनाओं में 'परिमल', 'गीतिका', 'अपरा', 'अनामिका', 'बेला', 'नये पत्ते' तथा 'तुलसीदास' आदि उल्लेखनीय हैं।

२० : : श्री सुमित्रानन्दन पन्त

श्री पन्त जी अपनी कोमलकान्त पदावली और सहज उर्वर कल्पना के लिए चिर-विख्यात हैं। अलमोड़ा-जैसी सुरम्य भूमि में जन्म लेने के कारण आप स्वभावतः प्रकृति-प्रेमी हैं। उनकी प्रायः सभी रचनाओं में प्रकृति-प्रेम की छाया किसी-न-किसी रूप में दृष्टिगत होती है। वह छायावाद-युग की महान् विभूति हैं।

आपकी अनुभूति उत्कृष्ट कोटि की है। आपकी रचनाओं की बड़ी विशेषता यह है कि भावों के अनुरूप शब्दों का गुम्फन ऐसा सुन्दर होता है कि देखते ही बनता है। प्रकृति जैसे साकार होकर आपकी रचनाओं में आ विराजती है। यही कारण है कि आपकी छायावादात्मक प्रतिभा भावों की सरसता में उपदेश का रूप न ग्रहण करके एक नवीन प्रेरणा प्रदान करती है। आपकी उपमाएँ नवीन, भाव-व्यंजना सजीव और शब्द-चयन अद्भुत है।

आपकी रचनाओं में 'पल्लव', 'वीणा', 'ग्रन्थि', 'गुञ्जन', 'ग्राम्या', 'युगान्त', 'पल्लविनी', 'युगवाणी', 'उत्तरा', 'युग-पथ', 'स्वर्ण-धूलि' तथा 'मधुज्वाल' आदि उल्लेखनीय हैं। इधर आपकी गांधीजी के बलिदान के बाद 'खादी के फूल' नामक पुस्तक भी प्रकाशित हुई है।

२१ : : महादेवी वर्मा

श्रीमती वर्मा रहस्यवादी कवियों में अपना प्रमुख स्थान रखती हैं। उनकी रचनाओं में वेदना संवेदनशील शैली में मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त हुई है। उनकी प्रकृति भी वियोगिनी है और वह उनके भाव-जगत् में पूर्णतया समाविष्ट हो चुकी है।

उनकी रचनाओं की एक-मात्र विशेषता यह है कि वह करुण विचारों की पृष्ठभूमि पर अपने जीवन का चित्र मुरझाये हुए फूल की भाँति इस प्रकार चित्रित करती हैं कि पाठक की आँखों से आँसू बरसे बिना नहीं रह सकते।

आप कविता के साथ-साथ चित्रकला और संगीत से भी प्रेम रखती हैं। आपकी रचनाओं में स्त्री-स्वभाव-सुलभ कोमलता और मधुर संगीतात्मकता है। आपकी कविताओं में नैराश्य, व्यथा और पीड़ा की करुण सरिता उद्दाम वेग से प्रवाहित होती हुई स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। आपकी रचनाओं में 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्य-गीत', 'यामा' और 'दीपशिखा' प्रमुख हैं।

२२ : : रामकुमार वर्मा

वर्माजी हिन्दी की रहस्यमयी परम्परा के पोषक कवियों में अपना विशेष स्थान रखते हैं। जीवन को नम्र दृष्टिकोण से देखकर उन अनुभूतियों को कविता में व्यक्त करना ही उनकी कला की विशेषता है। आप कवि होने के साथ-साथ उत्कृष्ट आलोचक तथा एकांकी नाटककार भी हैं।

आपकी 'चित्ररेखा' नामक काव्य-कृति पर •देव-पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। आपकी काव्य-कृतियों में 'वीर-हम्मीर', 'कुल-ललना', 'चित्तौड़ की चिता', 'रूप-राशि', 'शुजा', 'नूरजहाँ' तथा 'निशीथ' नामक इतिवृत्तात्मक काव्य हैं। 'चित्ररेखा', 'चन्द्रकिरण' और 'संकेत' आपकी

रहस्यवादी कविताओं के संग्रह हैं। 'अंजलि' और 'अभिशाप' भी आपकी उत्कृष्टतम काव्य-कृतियाँ हैं।

२३ : : हरिवंशराय 'बच्चन'

बच्चन जी हालावादी कवि के रूप में चिर-विख्यात हैं। आपकी शैली में जो सरलता, तरलता एवं सरसता है, उसने छायावाद तथा रहस्यवाद के नाम से ऊबी हुई जनता को एक नवीन चेतना तथा स्फूर्ति दी। इस प्रकार बच्चन वेदना, यौवन और अनुभूति के गायक कवि हैं। उनकी समस्त कृतियों में इनकी ही छाप है।

उमर खैयाम की रुबाइयों का हिन्दी में अनुवाद करके आपने अच्छी ख्याति प्राप्त की है। इससे आपको पर्याप्त प्रोत्साहन मिला और उसी ढंग पर फिर आपने 'मधुशाला', 'मधुबाला' तथा 'मधु-कलश' नामक कई पुस्तकों की रचना की।

संवत् १९९४ में आपकी पत्नी का देहान्त हो जाने के कारण आपकी कविता की धारा ही बिलकुल बदल गई। 'निशा-निमन्त्रण' में आपकी ऐसी ही रचनाएँ संग्रहीत हैं। 'एकान्त संगीत' में आपकी प्रतिभा और भी नये रूप में विकसित हुई। अब तो 'आकुल अन्तर', 'विकल विश्व', 'सतरंगिनी', 'सूत की माला' तथा 'मिलन-यामिनी' आदि आपके कई कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

२४ : : रामधारीसिंह 'दिनकर'

श्री 'दिनकर' जी का स्थान हिन्दी के कवियों में अपनी राष्ट्रीय जागरण-सम्बन्धी रचनाओं के कारण चिर-विख्यात है। इतिहास का मर्म जानने वाले भीतर-ही-भीतर उगने वाली वीरता की भावनाओं को प्रश्रय देकर प्रोत्साहित करने वाले कवियों में आप प्रमुख हैं।

विद्रोहात्मक कविताओं के अतिरिक्त आपकी कविता-निर्झरिणी

दूसरी ओर भी उद्दाम वेग से प्रवाहित हुई है। 'रेणुका', 'हुंकार' तथा 'द्वन्द्वगीत' के बाद आपकी 'रसवन्ती' में ऐसी ही रचनाएँ हैं। 'कुरुक्षेत्र' नामक काव्य की सृष्टि करके तो आपने एक नवीन दिशा का निर्देश किया है। इधर 'धूप और धुआँ' और 'इतिहास के आँसू' नाम से आपके दो काव्य-संग्रह और प्रकाशित हुए हैं। 'कुरुक्षेत्र' को साहित्यकार संसद् की ओर सम्मानित भी किया जा चुका है।

२५ : : नरेन्द्र शर्मा

श्री नरेन्द्र शर्मा मुख्यतः प्रेमानुभूति के गायक कवि हैं। आपने अपनी शैली द्वारा हिन्दी की नई धारा के कवियों में विशेष स्थान बना लिया है। आप अत्यन्त भावुक हृदय और सुकुमार प्रकृति के कवि हैं।

आपकी रचनाओं में पन्तजी की काव्य-शैली का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रेम, निराशा, संयोग, वियोग-जन्य परिस्थितियों से आपके कवित्व को विशेष प्रेरणा तथा स्फूर्ति मिली है।

इधर कुछ दिनों से आपकी चिन्तन-धारा बदल-सी गई है। देश की दशा का प्रभाव भी आपकी रचनाओं पर पड़ा है। इधर कुछ दिन से आपने प्रायः जन-जीवन के गीत गाए हैं। आपकी कविताओं में सुन्दर लय और मधुर गति है।

आपकी कृतियों में 'शूल-फूल' 'कर्णफूल', 'प्रवासी के गीत', 'प्रभात फेरी', 'कामिनी', 'पलाश वन', 'हंसमाला', 'अग्नि-शस्य' तथा 'रक्त-चन्दन' आदि प्रमुख हैं।

२६ : : रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

श्री अंचल जी प्रगतिवादी धारा के पोषक कवियों में अपना अन्यतम स्थान रखते हैं। जीवन की विषम अनुभूतियों का चित्रण

करके आपकी प्रतिभा उद्दाम वेग से प्रस्फुरित हुई है। अंचल जी की जीवन और यौवन की गहन अनुभूतियाँ सहज प्रेरक और अभिनन्दनीय हैं।

मानवीय मनोभावों का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण इधर उनकी रचनाओं का विशेष विषय रहा है। जीवन की गहन अनुशोचनाओं की अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में यत्र-तत्र अत्यन्त परिष्कृत रूप में दृष्टिगत होती है।

पहले वेदना और यौवन के कवि के रूप में अंचल विख्यात हुए और बाद में उनकी कल्पना यथार्थ का रूप धारण कर गई। मानवता और संस्कृति के उत्थान की भावनाएँ भी आपकी रचनाओं में समाविष्ट होती हैं।

आपकी प्रमुख कृतियों में 'अपराजित', 'किरण वेला', 'लाल चूनर' तथा 'करील' उल्लेखनीय हैं।

२७ : : शिवमंगलसिंह 'सुमन'

श्री सुमन जीवन और यौवन के गायक प्रतिनिधि कवियों में हैं। आपने जिस तन्मयता और भाव-प्रवणता का परिचय अपनी कविताओं में दिया है, वह नितान्त निरालेपन का व्यञ्जक है। प्रारम्भ में आपकी कृतियों में जीवन की यथार्थ अनुभूतियों से प्रेरित कल्पना, भावना तथा साधना की त्रिवेणी के दर्शन होते रहे।

धीरे-धीरे युगीन परिस्थितियों का प्रभाव आपके काव्य पर भी पड़ा और आप प्रगति-काव्य के सर्जक कवि के रूप में विख्यात हुए। जीवन की विषमताओं का यथार्थ चित्रण करके आपने अपनी कला को नई गति तथा चेतना दी।

सारांशतः आपकी रचनाओं में प्रेम, कल्पना तथा अनुभूति का सामञ्जस्य जिस प्रचुरता से हुआ है, वह निश्चय ही उनके गौरव के

अनुरूप है। सुरुचिपूर्ण शब्दावली और विचार-प्रेरक भावनाओं का चित्रण उनकी रचनाओं की एक-मात्र सजीव विशेषता है। उनकी रचनाओं में 'जीवन के गान,' 'हिल्लोल' और 'प्रलय सृजन' आदि उल्लेखनीय हैं।

शब्दार्थ

कबीर

साखी

१—सुबरन = स्वर्ण; सोना ।
सुरा = मदिरा; शराब ।
विकार = रोग ।

२—व्याधि = रोग; दुःख; कष्ट ।
उपाधि = दंगा; अनाचार ।
कुञ्जर = हाथी ।
मसि = स्याही ।

सबद

३—गरब = गर्व; अभिमान; अहंकार ।
अगम = जो न जाना जाय; कठिन ।
पारधि = शिकारी ।

४—भानु = सूर्य ।
बिधि = ब्रह्मा; विधाता ।
सबूरी = सब्र, सन्तोष ।

५—निहोरा = खुशामद ।
ऊसर = बंजर; जहाँ कुछ न उपजे ।

सूरदास

कृष्ण का बालरूप

६—पानि = हाथ ।
बदन = मुख ।
कनक = स्वर्ण; सोना ।
बिंब = प्रतिबिम्ब; परछाईं ।
राजत = शोभा देती ।
बसुधा = पृथ्वी ।
नवनीत = मक्खन ।
रेनु = मिट्टी; धूलि ।
चारु = सुन्दर ।
लोचन = आँखें ।
लोल = सुन्दर ।
मत्त = मस्त ।
मादक = नशीला ।

७—केहरि = सिंह ।
रुचिर = सुन्दर ।
व्यंजन = नाना प्रकार के भोजन ।
पतियाना = विश्वास करना ।
बरबस = जबरदस्ती ।

लकुटि = लाठी; छड़ी।
उर = हृदय; कण्ठ।
८—सघन = गहरे।
हौं = मैं।
चवाई = चालाक; चुगलखोर।
रिस = क्रोध।
धूत = मूर्ख।
बेनी = चोटी।
९—गुहत = गूँथती।

भक्ति

पय = दूध।
भुजंग = साँप।
स्वान = कुत्ता।
अरगजा = चन्दन।
मरकट = बन्दर।
सरिता = नदी।
पाहन = पत्थर।
पतित = नीच; पापी।
निषंग = तर्कस।
अनत = दूसरी जगह।
१०—कमल नैन = विष्णु भगवान्।
कूप = कुआँ।
खनाना = खुदवाना।
मधुकर = भौंरा।
अम्बुज = कमल।
छेरी = बकरी।

विरह-वर्णन

मग = मार्ग; रास्ता।
अकुलानी = व्याकुल; दुखी।
सुरभी = सुगन्धि।
तृन = तिनका; घास।
अलि = भौंरा।
विहंगम = पक्षी।
भीत = डरा हुआ।
११—तरुवर = पेड़; वृक्ष।
बसन = कपड़े।
मीन = मछली।
जल-सुत = कमल।
संपुट = फूल की पंखुड़ियाँ।
सारंग = हिरण।

तुलसीदास

भ्रातृप्रेम

१२—पुलक = कंपित।
नतरु = नहीं तो, अन्यथा।
रिपुसूदन = शत्रुहन।
१३—सिअरे = शीतल; ठंडे।
तुहिन = पाला; बर्फ़।
तामरस = कमल।
नीकि = अच्छी।
कदराई = कायरता; भीरुता।
मेरु = पर्वत।
मराला = हंस का बच्चा।
चरन-रत = चरणों में लीन।

परिहरि = छोड़ना; त्यागना।

सभीत = डरा हुआ।

भरत-कौशल्या संवाद

अवनि = पृथ्वी।

१४—त्रिभुवन = तीनों लोक।

केतू = नक्षत्र; तारे।

अनरथ = अनिष्ट; बुराई।

लोचन = आँखें।

बारि = जल; पानी।

बाम = प्रतिकूल; उल्टा।

१५—आयसु = आज्ञा।

बलकल = वृक्ष की छाल।

परितोषू = सन्तोष।

बिपिन = वन; जंगल।

१६—जुग = दोनों।

अघ = पाप।

महि = पृथ्वी।

तिय = स्त्री।

मीत = मित्र।

महीपत = राजा।

पातक = पाप; दोष।

पिसुन = चुगलखोर।

लम्पट = कामी; दुराचारी; धूर्त।

परदारा = पराई स्त्री।

परमारथ = दूसरों की भलाई; अच्छा काम।

१७—श्रुतिपन्थ = वेदों का मार्ग।

बामपथ = उल्टा मार्ग; अधर्म का रस्ता।

वंचक = धूर्त; पाखण्डी।

भेऊ = भेद।

काय = काया; शरीर।

बिधु = चन्द्रमा।

बारिचर = बादल।

बरु = उत्तम; सुन्दर।

निषाद-भक्ति

रज = धूलि; मिट्टी।

मूरि = बूटी; जड़ी; औषधि।

१८—तरनि = नौका।

कयारु = काम-धन्धा।

राउर = राजा।

अटपटे = अस्पष्ट; मर्म भरे।

बिलंब = देर।

कठवता = काठ की परात।

सरोज = कमल।

१९—सुमन = फूल।

सुर = देवता।

पखारना = धोना।

मुदित = प्रसन्न।

सुरसरि = गंगा नदी।

मुँदरि = अँगूठी।

अनुग्रह = कृपा।

चित्रकूट निवास

२०—मंदाकिनी = गंगा।
मज्जत = स्नान करते।
राजीव = कमल।
विटप = वृक्ष।
अभिमत = सम्मत; अभीष्ट।
सरसीरुह = कमल।
सदन = घर।
रमा = लक्ष्मी।
विहँग = पक्षी।
मंजु = सुन्दर।
पथिक = बटोही; मुसाफिर।
समीर = पवन।
सुभग = सुन्दर।
किरात = व्याध; बहेलिया।
खग = पक्षी।

२१—गिरि = पर्वत।

रामभक्ति

पातकी = पापी।
आरत = दुखी।
तृषित = प्यासा; इच्छुक।
आनन = मुख।
विपुल = अधिक; अपार।
कमठ = कछुआ।
अनुराग = प्रेम।
रसना = जबान।
सनेही = प्रेमी।
अंजन = सुरमा।

२३. विरुद = प्रशंसा।
परसि = छूना।
रिपु = शत्रु।
मारुत = पवन।

दोहे

२४—भव = संसार।
अपवाद = बुराई।
पांवर = नीच; पातकी।
सारदूल = सिंह।
कूकर = कुत्ता।
विद्यमान = मौजूद।
समरथ = शक्तिशाली।
सुकृति = अच्छा कार्य।
लोलुप = लालची।

२५—सलिल = पानी।
बूड़त = डूबते।
पावस = वर्षा।
दादुर = मेंढक।
तरु = वृक्ष, पेड़।

मीराबाई

श्रीकृष्ण प्रेम

२६—चाकर = नौकर।
धेनु = गाय।

२७—कानि = लाज, शर्म।
काल-व्याल = मृत्यु रूपी सर्प।

विरह-वेदना

२८—दाधी = जली हुई।

उपदेशात्मक पद

अधम = नीच।

नासिका = नाक।

भक्ति माहात्म्य

२९—मघवा = इन्द्र।

३०—अधर = ओंठ।

राजति = शोभा देती।

छुद्र = छोटी।

कटि = कमर।

नूपुर = पाँव की अँगुलियों का आभूषण।

अमोलक = अमूल्य।

नरोत्तमदास

सुदामा चरित्र

३१—घरनी = स्त्री; पत्नी।

कोदो = एक प्रकार का अन्न।

पन = अवस्था; बचपन-युवापन आदि।

३२—कनावड़ो = छोटा; तुच्छ।

दीठि = दृष्टि।

पौरजन = द्वारपाल; ड्योढ़ीवान।

लटी = पुरानी; फटी।

उपानह = जूती।

वसुधा = पृथ्वी।

३३—कमला = लक्ष्मी।

सुरनायक = इन्द्र।

निधि = धन-दौलत।

सुषमा = शोभा।

तंदुल = चावल।

रोष = क्रोध।

चरनोदक = चरणामृत।

बाजि = घोड़े।

३४—कामरी = कम्बली।

रहीम

दोहे

३५—निसि = रात।

बासर = दिन।

मिताई = मित्रता।

दिव्य = अलौकिक; सुन्दर।

वित = धन।

कंज = कमल; फूल।

ससि = चन्द्रमा।

३६—पंक = कीचड़।

अघाय = पेट भरकर।

उदधि = समुद्र।

कदली = केला।

गरुवे = भारी।

सूप = छाज।

अन्योक्ति

३७—विटप = पेड़।

पुहुप = पुष्प, फूल।

रसखान

मंगलाचरण

३८—दृग = आँख ।

सर = तीर; बाण ।

बंक = टेढ़ा ।

मनोज = कामदेव ।

दोहे

असित = टेढ़ा ।

बारुनी = मदिरा; शराब ।

गिरीस = शिवजी ।

३९—अकुवार = अंकुर; कोंपल ।

मात्सर्य = ईर्ष्या; डाह ।

अग = न चलने वाला; स्थावर ।

फुटकर

४०—पुरन्दर = इन्द्र ।

कालिंदी = यमुना ।

कूल = किनारा ।

तड़ाग = तालाब ।

कलधौत = सोना; चाँदी ।

४१—मरकत = रत्न ।

छार = राख, भस्म ।

बयार = पवन ।

लबार = मूर्ख; गंवार ।

कंचन = सोना ।

मुक्ताहू = मोती ।

बिहारीलाल

भक्ति

४३—भव = संसार ।

नागरि = चतुर; सुन्दरि ।

बूड़ै = डूबे ।

दावानल = अग्नि ।

नीति

४४—तन्त्री = वीणा ।

दमामौ = नगाड़ा ।

नलनीर = कमल की डंडी ।

उदोत = प्रकाश; रोशनी ।

मयंकु = चन्द्रमा ।

अन्योक्ति

पराग = पुष्प-धूलि ।

४५—बाइस = काग ।

तरवर = वृक्ष ।

नवदल = नये पत्ते ।

कुरंग = हिरण ।

सौन्दर्य

उरबसी = ऊर्वशी; अप्सरा ।

अनूप = सुन्दर; जिसकी उपमा न हो ।

भारु = बोझ ।

सुकुमार = कोमल ।

४६—कूर = मूर्ख; निर्बुद्धि ।

प्रकृति

अहि = साँप ।

मयूर = मोर ।

निदाघ = गर्मी ।

विभावरी = रात्रि ।

धोक = आश्रय; घर ।

धौस = दिन ।

भूषण

शिवाजी का पराक्रम

४७—वारिधि = बादल ।

तिमिर = अँधेरा ।

तरनि = सूर्य ।

कैटभ = एक राक्षस ।

पन्नग = गरुड़ ।

भूधर = पर्वत ।

जुत्थ = समूह; झुण्ड ।

कुतूहल = आश्चर्य; कौतुक ।

भृकुटी = भौंह ।

४८—कवच = जिरह बख्तर ।

कटक = सेना ।

पारावार = समुद्र ।

सोनित = लहू; रुधिर ।

४९—अरि = शत्रु ।

परिचारिका = रक्षिका; सेविका ।

सुक-सारिका = तोता-मैना ।

हिन्दुत्व-रक्षा

५०—देवल = मन्दिर ।

दुनी = संसार ।

यश श्वेतिमा

अनुज = छोटा भाई ।

५१—रजनीस = चन्द्रमा ।

छत्रसाल की दानशीलता

गयन्द = हाथी ।

हय = घोड़ा ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारत दुर्दशा

५२—मूढ़ता = मूर्खता ।

कलह = क्लेश; लड़ाई-झगड़ा ।

पंगु = बिना पाँव का ।

आह्वान

५३—परिकर = तैयारी ।

आरजगन = आर्यगण ।

समर = युद्ध ।

यमुना-वर्णन

५४—तरनि-तनूजा = सूर्य की पुत्री; यमुना ।

कूल = किनारा ।

मुकुर = शीशा ।

प्रनवत = प्रणाम करता हुआ ।

पावन = पवित्र ।

आतप = गर्मी ।

कुमुदिनी = कमलिनी ।

उपचार = सामग्री ।

सात्विक = सतोगुणी ।

मधि = मध्य में ।

२६—तरंग = लहर।

रजत = श्वेत; चाँदी जैसी।

श्रीधर पाठक

सुसन्देश

२७—सुमंजु = मधुर; सुन्दर।

प्रवीनता = चतुरता।

सुधा = अमृत।

पुरन्दर = इन्द्र।

किरकिरी = दासी।

वियोगतप्ता = वियोग में जलती हुई।

प्रकोपन = क्रोध करना।

दाक्षिण्य = अनुकूलता; प्रसन्नता।

देश गीत

२८—अजय = जो जीता न जा सके।

सदय = दया से भरा हुआ।

सुललित = सुन्दर।

राकेश = चन्द्रमा।

कलरव = पक्षियों का शोर।

तेजपुंज = प्रकाश का समूह

सुखद = सुख देने वाला।

वितान = तम्बू।

सुकृत = अच्छा कार्य; सदाचार।

काश्मीर सुषमा

२९—श्री = शोभा; छटा।

प्रथित = प्रसिद्ध।

अभिराम = सुन्दर।

धवल = श्वेत।

हिमशृंग = बर्फ से ढकी हुई चोटियाँ।

तुंग = चोटी।

दुर्गम = जहाँ जाना कठिन हो।

नद = समुद्र; बड़ी नदी।

विमल = पवित्र; शुद्ध स्वच्छ।

वितस्ता = झेलम नदी।

सरित = नदी।

निर्झर = झरना।

रव = शोर; कोलाहल।

दीरघ = बड़े।

शाद्वल = हरा-भरा स्थान।

कमनीय = सुन्दर।

सर-कूल = तालाब का किनारा

सुघर = सुन्दर।

सरोवर = तालाब; झील।

६०—अवलि = पंक्ति; कतार।

गह्वर = गहरे।

पंकज = कमल।

उदर = पेट।

अद्रि = पर्वत।

नैसर्ग = प्रकृति।

अयोध्यासिंह उपाध्याय

कर्मवीर

६३—व्योम = आकाश ।
तम = अन्धेरा ।
सम्पदा = धन; संपत्ति ।
६४—जलधि = समुद्र ।

अनूठी बातें

६५—वेला = समय ।
६६—लगावट = दुश्मनी ।
६७—हित = भलाई ।

निजता

६८—ललक = लोभ; लालच ।
६९—आनबान = ठाठ-बाट ।

राधा की लोकसेवा

परम व्यथिता = बहुत दुखी ।
विपन्ना = दुखी; व्याकुल ।
उद्विग्ना = व्याकुल; व्यथित ।
७०—क्लान्तियाँ = थकावटें ।
गोप = ग्वाल ।
उद्योगी = परिश्रमी ।
७१—संलग्ना = तल्लीन; लग्न में डूबी हुई ।
आधि = रोग; कष्ट ।
संवर्द्धना = वृद्धि ।
तामसी = अँधेरी ।
कौमुदी = चाँदनी ।
अंक = गोद ।

मैथिलीशरण गुप्त

अभिमन्यु का रण-गमन

७२—सुरराज = इन्द्र ।
सूत = सारथी ।
विस्मित = चकित; हैरान ।
वय = आयु; अवस्था ।
गुरुतर = भारी ।
रण-विज्ञ = युद्ध में कुशल ।
७३—हयमेध = अश्वमेध-यज्ञ ।
मख-अश्व = यज्ञ का घोड़ा ।
घोष = आवाज; शोर ।
उद्यत = तैयार ।
प्रस्तुत = तैयार; तत्पर ।
राजीवलोचन = कमल जैसी आँखों वाला ।
शिविर = तम्बू; डेरा ।
७४—उपकरण = साधन; सामान ।
सम्प्रति = इस समय; अभी ।
स्कन्ध = कन्धा ।
सान्त्वना = धैर्य ।
पाणि-पल्लव = हाथ ।
७५—वारण = निषेध ।
स्नुषा = पुत्रवधु ।
सन्ताप = दुख; कष्ट ।
७६—समग्र = सब; तमाम ।
व्यग्र = दुखी; व्याकुल ।
प्रवाह = बहाव; वेग ।

कैकेयी का पश्चात्ताप

उटज = झोंपड़ी; पर्णशाला।

परिणामोत्सुक = परिणाम जानने के इच्छुक।

अभीप्सित = वांछित; इच्छा किया हुआ।

७७—अरण्य = वन; जंगल।

शपथ = सौगन्ध।

७८—अनुताप = पश्चात्ताप; रोना-पीटना।

ज्वलित = जलता हुआ; प्रकाशमान।

वात्सल्य = पुत्रवत् प्रेम।

त्रैलोक्य = तीनों लोक।

मृदुल = कोमल।

राहुल-जननी

७९—उपवन = बाग।

वर्ण = रंग।

८०—विद्ध = बिंधा हुआ।

पक्ष = पंख।

आहत = घायल।

उभय = दोनों।

जयशंकर प्रसाद

हमारा देश

८२—अरुण = लाल; प्रकाशमान।

क्षितिज = वह स्थान जहाँ पृथ्वी आकाश मिले दिखाई देते हैं।

कुंकुम = रोली।

नीड़ = घोंसला।

भारतवर्ष

८३—हीरक = हीरों का।

आलोक = प्रकाश।

अखिल = तमाम।

संसृति = सृष्टि; संसार।

केतन = झण्डा।

अभीत = निडर।

८४—धरा = पृथ्वी।

पूत = पवित्र।

विपन्न = दुखी।

अशोक की कलिंग-विजय

८५—भाल = मस्तक।

ललाम = सुन्दर।

प्रासाद = महल।

विहान = सवेरा; प्रातः काल।

मधुसिंचित = रस से सींचे हुए।

८६—इंगित = इशारा।

प्रकम्पित = काँपता हुआ।

रंजित = रंगा हुआ।

तूर्यनाद = रण-भेरी।

रण-प्रमाद = युद्ध का नशा।

उद्घोषक = घोषणा करने वाला।

उन्मत्त = मस्त; पागल।

गवाक्षों = झरोखों।

मंथर = मन्द; धीरे-धीरे।

८७—आरूढ़ = विराजमान; चढ़ा हुआ।

प्राची = पूर्व।

पदाति = पैदल सेना।

८८—असि = तलवार।

क्षुरप्र = बाण।

विषाक्त = जहरीले।

पदमर्दित = पाँवों से रौंदे हुए।

मद-मत्सर = अहंकार; घमंड।

८९—अन्तर = हृदय।

शतदल = कमल।

विप्लव = विद्रोह; हलचल।

श्रेयस्कर = मंगलकारी।

बर्बरता = निर्दयता।

उपचार = इलाज।

९०—अनुसरण = पीछे चलना।

सरसिज = कमल।

किंजल्क = पराग-रस।

कान्त = सुन्दर।

कोकनद = लाल पद्म।

९१—विरज = स्वच्छ; निर्मल।

वलय = समूह।

गीत

किसलय = कोंपल; पत्ते।

मुकुल = एक प्रकार का छन्द।

अलकों = बालों।

मलयज = सुगन्धित समीर।

अभियान गीत

हिमाद्रि = हिमालय पर्वत।

अमर्त्य = जो न मरे।

प्रशस्त = प्रशंसनीय; मनोहर।

विकीर्ण = चारों ओर फैला हुआ।

अराति = शत्रु।

माखनलाल चतुर्वेदी

भारतीय विद्यार्थी

९३—मनस्वी = उच्च विचार वाला।

शौर्य = वीरता।

९४—मेखला = लंगोटी; कमरबन्द

मुदित = प्रसन्न।

क्षुभित = क्रोधित।

९५—पोत = जहाज़।

९६—जागृति = चेतना; जागरण।

सुखकर = सुख देने वाला।

९७—उन्मुक्त = स्वतंत्र।

सुभद्राकुमारी चौहान

बचपन

९८—अतुलित = जो तोला न जा सके; बहुत अधिक।

द्रुम = पेड़; वृक्ष।

विश्रांति = थकावट ।

९९—आह्लाद = खुशी; प्रसन्नता ।

प्रफुल्लित = फूला हुआ; प्रसन्न ।

वीरों का वसन्त

दिग्-दिगन्त = दिशाएँ ।

अनंग = कामदेव ।

१००—अतीत = बीता हुआ समय ।

झाँसी की रानी

१०१—आराध्य = पूज्य ।

सुभट = वीर; योद्धा ।

विरुदावलि = कीर्ति-गान ।

१०२—लावारिस = अनाथ ।

अश्रु पूर्ण = आँसुओं से भरी ।

१०३—अनुनय = विनय; प्रार्थना ।

वज्र-निपात = वज्र गिरना ।

१०४—आह्वान = पुकारना; बुलाना ।

१०६—वीरगति = युद्ध में प्राण गँवाना ।

मनुज = मनुष्य ।

१०७—स्मारक = यादगार ।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

आओ नव-निर्माण करें

१०८—नूतन = नये ।

विध्वंस = नष्ट ।

कीटाणु = कीड़े ।

विराट् = विशाल ।

विलुप्त = गायब ।

अंकित = खुदा हुआ; छपा हुआ ।

दायित्वभार = जिम्मेवारी का बोझ ।

१०९—आधार = सहारा ।

आमन्त्रण = निमन्त्रण ।

आडंबर = ढोंग; पाखंड ।

विजय-वरण-हित = विजय-प्राप्ति के लिए ।

शर-संधान = तीर खींचना ।

अदम-उत्साही = बहुत उत्साह वाला ।

तुमुल = घोर ।

अवलोकें = देखें ।

११०—भीतियाँ = डर; भय ।

हिन्दुस्थान हमारा है ।

सिरजन = निर्माण; बनाना ।

गतिमय = चलायमान ।

१११—स्वधा = यज्ञ की आहुति ।

ज्ञान-निधान = ज्ञान का भंडार ।

अतिशय = बहुत ज्यादा ।

शोणित = लहू; रुधिर ।

विप्लव गायन

११२—जलद = बादल ।

वक्षस्थल = छाती ।

कालकूट = विष, ज़हर ।
विगलित = गला हुआ ।
अन्तरिक्ष = आकाश ।
तर्जन = गर्जन ।
प्रांगण = आँगन ।
हृत्तल = हृदय का स्थान ।
संरक्षण = रक्षा ।
११३—अन्तरतर = हृदय ।
पेखो = देखो ।
अवशेष = बाकी ।
परिचालन = चलाना ।
वर्तिका = बत्ती ।
११४—स्फुरण = स्फूर्ति
मुक्ता = मोती ।
भावार्णव = विचारों का समुद्र ।

रामनरेश त्रिपाठी

वह देश कौनसा है

११५—रत्नेश = समुद्र ।
११६—तृणवत = तिनके के समान ।

ग्राम-शोभा

अविराम = बिना रुके; निरंतर ।
११७—प्रखर = कुशल; तीव्र; चतुर ।
वारिज = कमल ।
सर = तालाब ।
विशद = विशाल, विस्तृत ।
विमलोदक = स्वच्छ जल ।
प्रसून = फूल ।
कन्दुक = गेंद ।
मकरंद = पराग; पुष्प धूलि ।
११८—चतुर्दिक = चारों ओर ।
पादप = पत्ते ।
निस्तब्ध = शान्त; चुप ।
निशीथ = चन्द्रमा ।
तमावृत्त = अन्धेरे से ढका हुआ ।
तुषार = पाला; बर्फ़ ।
विपुल = बहुत अधिक; अपार ।
महत्ता = बड़प्पन ।

अन्वेषण

माशूक = प्रेमिका ।
अंजुमन = सभा, महफ़िल ।
११९—अनित्यता = नश्वरता ।
उत्थान = ऊपर उठना ।
दहन = अग्नि ।
पील तन = हाथी जैसे शरीर वाला ।
प्रतिभा = बुद्धि ।

देश-सेवा

१२०—निर्विघ्न = बेरोक टोक ।
विनिमय = आदान-प्रदान; अदल-बदल ।

नीरुज = कमल ।

विलासयुक्त = विलास से भरे ।

संचय = एकत्रित ।

१२१—चमू = सेना ।

औचक = अचानक; सहसा ।

देशाधिप = राजा ।

दुर्जेय = जो जीता न जा सके ।

धान्यागार = अन्न के भण्डार ।

सत्वर = शीघ्र ।

चकित = विस्मित; हैरान ।

नीति-निपुण = नीति जानने वाला ।

इन्द्रिय-जित = इन्द्रियों को जीतने वाला ।

जगज्जयी = संसार को जीतने वाला ।

१२२—निबिड़ = घोंसला ।

दिनकर = सूर्य ।

दीप्तिमान = प्रकाशमान ।

शत्रुमर्दन = शत्रुओं को कुचलना ।

शयनागार = सोने का कमरा ।

नवोढ़ाओं = नई वधुओं; स्त्रियों ।

तत्क्षण = उसी समय, तुरन्त ।

१२३—असि = तलवार ।

लक्षित = प्रकटित; दिखाई देना ।

उद्दाम = प्रबल ।

अविरल = अधिक, गहरी ।

१२४—श्रवण = कान ।

अन्तस्तल = हृदय ।

बानक = वेष ।

निर्निमेष = एकटक; अपलक ।

१२५—वातायन = खिड़की; झरोखा ।

चयन = छाँटना; चुनना ।

उत्तेजित = उत्तेजना से भरा हुआ ।

१२६—वीर-प्रसू = वीर को जन्म देने वाली ।

अलंकृत = सजी हुई

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

जय

१२७—शस्य = धानों से हरी; अन्न ।

गर्जितोर्मि = गरजती हुई लहरें ।

शुचि = पवित्र ।

स्तव = स्तुति ।

ज्योतिंल = चमकता हुआ पानी ।

प्रणव = प्रणाम करना, ओंकार ।

मुखरे—खिल उठे ।

जागो फिर एक बार

१२८—कोरकों = पंखुड़ियों ।

अस्ताचल = सूर्य के छिपने का स्थान ।

यामिनी = रात्रि ।

विरह-विदग्धा = विरह में जलती हुई ।

१२६—लघुतर = बहुत छोटा ।

शयन = सोना ।

स्वप्निल = नींद से भरी हुई ।

आतुर = इच्छुक ।

ऋजु = सत्य ।

अरुणाचल = सूर्य निकलने का स्थान ।

सुमित्रानन्दन पन्त

ज्योति भारत

१३१—तेजोन्मेष = तेज की ओर बढ़ता हुआ ।

समाधिस्थ = समाधि लगाये हुए ।

ज्योतिर्मय = प्रकाश से भरा हुआ ।

लोकेश = संसार का स्वामी ।

रक्त-स्नात = लहू में नहाया हुआ ।

प्लावन = सिंचन ।

आदेश = आज्ञा ।

मंगलमय

१३२—स्मित = मुस्कराहट ।

सृजन = निर्माण; बनाना ।

कर्मजनित = कर्म से उत्पन्न ।

विराम = ठहरना ।

श्रेय = कल्याण; महत्व ।

ग्रथित = बँधा हुआ ।

छाया

विजन = सुनसान; मनुष्य से रहित ।

विधुरा = विधवा ।

मानस-पट = हृदय रूपी वस्त्र।

क्रूर = कठोर ।

१३३—कालानिल = मृत्यु की अग्नि ।

कुंचित = टेढ़ी ।

निर्भर = आश्रित ।

यवनिका = नाटक का पर्दा ।

द्रुत = तेजी के साथ ।

अन्तर्धान = गायब, छिपना ।

जगजीवन

अपलक = एकटक ।

तारावलि = तारों की पंक्ति ।

१३४—बुद्बुद = बुलबुला ।

महादेवी वर्मा

मुरझाया हुआ फूल

१३५—अंक = गोदी ।

लुब्ध = मोहित; लुभाया हुआ।

स्निग्ध = चिकने ।

मुक्ताजाल = मोतियों का जाल ।

उद्यान = बाग ।

१३६—सर्वस्व = सब कुछ ।

१३७—निस्सार = बिना सार का; व्यर्थ ।

पपीहा

विहाग = एक राग का नाम।

पयोधर = बादल ।

संयोग = मिलन ।

वियोग = बिछुड़ना ।

संताप = दुख, कष्ट ।

पाहुन = पाहुना; मेहमान ।

दीपशिखा = दीपक की लौ ।

१३८—निठुराई = निष्ठुरता, कठोरता ।

विलाप = रोदन ।

दीपक जल

अपरिमित = असंख्य, बहुत अधिक ।

शलभ = पतंगा ।

सिहर = काँपता हुआ ।

स्नेहहीन = प्रेम से रिक्त ।

१३९—हृदयंगम = हृदय में रखना ।

सुभग = सुन्दर ।

अक्षय = जिसका नाश न हो ।

क्षय = नष्ट होना ।

छलनामय = धोखे से भरा हुआ ।

बदली

१४०—स्पन्दन = कम्पन ।

क्रन्दन = रोना ।

दुकूल = दुपट्टा, वस्त्र ।

आगम = आना ।

एक गीत

१४१—धूममयी = धुएँ से भरी हुई ।

वीथी = गली ।

इति-अथ = समाप्ति और प्रारम्भ ।

अभिसार = नायक-नायिका का संयोग ।

रामकुमार वर्मा

पतझड़

१४२—वक्र = टेढ़ा

विहार = भ्रमण; सैर ।

कामना

१४३—जलद-जाल = बादलों का समूह ।

अन्तराल — हृदय ।

अश्रुमाल = आँसुओं की माला ।

चपल = चंचल ।

सहास = हँसी के साथ ।

१४४—रसाल = रस से भरा ।

आत्मा की स्मृति

१४५—तारक-प्रकाश = तारों की रोशनी ।

स्मृति-निधि = याद रूपी धन ।

समर्पित = सौंपना, भेंट करना ।

हरिवंशराय 'बच्चन'

पथ की पहचान

१४६—बटोही = यात्री; पथिक ।

बाट = मार्ग ।

मूक = चुप; खामोश ।

१४८—अवधान = भेद ।

१४९—निलय = घर ।

दीप्ति = प्रकाश ।

मिलन-यामिनी

१५०—कुन्तल = घुँघराला ।

मुकुलित = खिला हुआ ।

१५१—म्लान = उदास; मुरझाया ।

हुलसे = प्रसन्न हुए ।

माँग रहे हैं समाधान

दानवता = दुष्टता ।

मानवता = मनुष्यता ।

विक्षुब्ध = क्रुद्ध ।

१५२—समाधान = शंका-निवारण ।

नश्वर = नष्ट होने वाला ।

निधन = मृत्यु ।

१५३—षड्यन्त्री = जाल रचने वाला ।

कुत्सित = बुरा ।

प्रतीक = चिन्ह ।

आजादी का गीत

आतंकित = डरा हुआ ।

हिम-किरीट = बर्फ का मुकुट ।

१५४—वाहन = सवारी ।

करतल = हथेली ।

इन्द्रायुध = इन्द्र का धनुष ।

कर्मठ = कर्मशील; कर्म करने वाला ।

रामधारीसिंह 'दिनकर'

जवानी का झण्डा

१५५—कराल = भयंकर; कठोर ।

१५६—धूर्जटी = शिवजी ।

त्रिपान = डमरू ।

बापू

१५७—अजस्र = निरन्तर, लगातार ।

क्षीर = दूध ।

दह्यमान = जलता हुआ ।

व्यग्र = व्याकुल ।

खगोल = आकाश ।

कालोदधि = मृत्यु रूपी समुद्र ।

सेतु = पुल ।

ग्रीवा = गर्दन ।

हिमालय के प्रति

१५८—नगपति = पर्वतों का राजा ।

साकार = साक्षात् ।

निर्बन्ध = स्वतन्त्र ।

गर्वोन्नत = गर्व से ऊँचा उठा हुआ ।

निस्सीम = जिसकी कोई सीमा न हो ।

यतिवर = यति; तपस्वी ।

निदान = उपचार ।

विषम = टेढ़ा; कठिन ।

दृगोन्मेष = आंखें खोलना ।

अमिय = अमृत ।

क्लान्त = दुखी ।

१५६—तपी = तपस्वी ।

व्याल = साँप ।

१६०—भग्नावशेष = खण्डहर ।

अम्बुधि = समुद्र ।

१६१—निनाद = घोष; आवाज ।

शैलराट् = पर्वतों का राजा ।

प्रमाद = नशा; मस्ती ।

जनता और जवाहर

मद्धिम = मन्द ।

१६२—निर्वापित = बीता हुआ ।

आसन्न = निकट आया हुआ ।

नरता = मनुष्यता ।

पीयूषमयी = अमृत भरी ।

१६३—अभिशप्त = अभिशाप पाया हुआ ।

आलोड़न = मथना; हिलाना ।

निष्ठा = श्रद्धा ।

१६४—प्रदीप्त = प्रकाशमान ।

तमिस्रा = अन्धेरी रात ।

शायक = बाण ।

सन्धान = तीर खींचना ।

विषण्ण = दुखी ।

१६५—दर्पशाली = घमण्ड करने वाला ।

नरेन्द्र शर्मा

देवली की दुनिया

१६६—मनुहार = मनाना; मिन्नत ।

पाटल = पत्ते ।

वंचित = रहित; खाली ।

कगारों = किनारों ।

१६७—फेन-कण = झाग के कण ।

लास = हँसी ।

वह्नि-वृष्टि = अग्नि की वर्षा ।

हिन्दू-मुसलमान

वणिक = बनिया; व्यापारी ।

१६८—समष्टि = समूह, समाज ।

१६९—बोदा = कमज़ोर, निर्बल ।

असहयोग = साथ न देना ।

संगम = मिलाप; मेल ।

खुद्दारी = स्वाभिमान ।

१७०—संकीर्ण = संकुचित ।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

जन-जन के मन में

१७१—ज्वाला = आग की लपटें ।

दलित = दले हुए ।

बुभुक्षित = भूखे ।

प्रतिहिंसा = बदले के लिए की जाने वाली हिंसा ।

हताशों = निराशों ।

परवशता = पराधीनता ।

उद्वेलित = उथल-पुथल करना ।

१७२—लावा = ज्वालामुखी से निकलने वाला तरल गर्म पदार्थ ।

नव-संस्कृति से

शेफाली = कमलिनी ।

शिवमंगलसिंह 'सुमन'

जीवन और गीत

१७३—मधु ऋतु = वसन्त ऋतु ।

पारस = वह पत्थर जिसके स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है ।

कर्षण = आकर्षण, खिंचाव ।

१७४—अकुलाहट = आकुलता ।

उपलों = पत्थरों; ओलों ।

ताण्डव = प्रलयंकारी नृत्य ।

१७५—कल्पतरु = स्वर्ग में एक वृक्ष ।

मही = पृथ्वी ।

छोड़कर नगरी तुम्हारी जा रहा हूँ

१७६—आभा = ज्योति; सुन्दरता ।

मूर्च्छना = बेहोशी ।

शुष्क = सूखे, नीरस ।